* श्रीः *

तेजोबिन्दु-उपनिषद्

(भाषा टीका सहित)

टीकाकार—

साधु भगवानसिंह

प्रथमावृत्ति १०००
श्रावण सुदी पूर्णिमा
वि० सं० २००१

प्रकाशक—
साधु भगवानसिंह
भगवानपुरा—ऋषिकेश

भूमिका
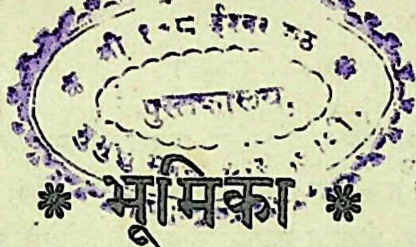
श्री गंगा तट पर विराजमान ऋषिकेश (भगवानपुरा) में जब हम थे, एक दिन एक शास्त्रों की जानकार माता आई। उसने कैवल्य उपनिषद् लेते हुए मुझ से कहा कि आप 'तेजोबिन्दु उपनिषद्' भाषा टीका सहित छपा कर प्रकाशित करें तो धार्मिक जनता का अच्छा कल्याण हो। उस समय मैं ने कहा कि ईश्वरीय कृपा से ऐसा ही होगा।

पीछे मुलतान नगर में (पाक दर्वाजा के भीतर) मुहल्ला चौधरी सलामतराय में रखीबाई के गुरुद्वारा में सत्संग हुआ उस समय भी अनेक सत्संगियों ने उस माता के समान तेजोविन्दु उपनिषद् भाषा टीका करके प्रकाशित करने की प्रेरणा की। उनकी प्रेरणा और श्री १०८ विद्वद्वर, पूज्यवर देवहरि जी की कृपा से तेजोविन्दु उपनिषद् भाषा टीका सहित तयार हो गया।

तेजोविन्दु उपनिषद् का भाव यह है कि "केवल शुद्ध चैतन्यघन ब्रह्म में यह दृश्यमान अनात्मवर्ग नहीं है, न हुआ और न होगा। शुद्ध चैतन्य की उपलब्धि में ऐसा पर्दा है जो ज्ञान नहीं होने देता। जैसे रज्जु में भ्रम के परदे के कारण रज्जु का ज्ञान नहीं होता। चैतन्यघन ब्रह्म रूप अपने आप

होता हुआ भी यह मोही जीव अपना स्वरूप पहचानने में असमर्थ है। यदि इस मोही जीव पर ईश्वर की तथा गुरु की महती कृपा हो तथा महान पुण्य उदय हो तो यह अपने ब्रह्म स्वरूप आत्मा का साक्षात् अनुभव कर सकता है।

इस तेजोबिन्दु उपनिषद् का पाठ करना चाहिये—

अहं ब्रह्मास्मि मन्त्रोऽयं ज्ञानानन्दं प्रयच्छति।

सप्तकोटि महामन्त्र जन्मकोटिशतप्रदम्।

सर्वमन्त्रान्समुत्सृज्य एतं मन्त्रं समभ्यसेत्॥

अध्याय ३, मन्त्र ७२-७३

भाषा—'मैं ब्रह्म हूं' यह मन्त्र ज्ञान आनन्द को देता है। सात करोड़ महामन्त्र है, व सौ करोड़ जन्म के देने वाला है। इस लिये इन सब मन्त्रों को त्याग कर इसी मन्त्र का अभ्यास करे। महामन्त्र सर्व मन्त्रों का शिरोमणि मन्त्र 'अहं ब्रह्मास्मि' यह महावाक्य है ॥१॥ अधिकारी जन इसी मन्त्र का जाप अभ्यास करें।

इस पुस्तक के प्रकाशन में निम्नलिखित भाई बहिनों ने सहायता प्रदान की है।

२५० पुस्तकें साईवाल निवासी शाह शिवदित्ता मल ने अपनी स्वर्गवासिनी पुत्री प्रीतमदेवी के स्मरणमें छपाईं।

१२५ पुस्तकें सरगोधा (ब्लाक नं० ५) निवासी शाह अविनाशीदास कंत्रोड़ के स्वर्गवासी पुत्र मुलखराज के स्मरण में उसकी माता ने छपाईं।

१२५ पुस्तकें सरगोधा (ब्लाक नं० ५) निवासिनी श्रीमती शिवदेवी धर्मपत्नी बा० ब्रजलाल बत्रा ने छपाईं ।

मुलतान-वासिनी सुक्खां माता ने ६५ पुस्तकें तथा गगो माता ने ६५ पुस्तकें छपाईं ।

श्रीमती रामप्यारी, धर्मपत्नी सेठ भानाराम जी गंड मुलतान निवासी ने अपने पति के स्मरण में ६२ पुस्तकें छपाईं । तथा श्रीमती उत्तमीबाई राजपाल ने ६३ प्रति छपाईं ।

श्रीमती भगवानदेवी धर्मपत्नी सेठ झांगीराम बजाज साईवाल ने ५० पुस्तकें छपवाने की सहायता की ।

एवं लायल पुर निवासी श्रीमान सेठ द्वारिकादास जी तथा श्रीमती जमुनादेवी ने अपनी सुपुत्री विमलादेवी तथा सुपुत्र सूर्य की अचानक मृत्यु हो जाने पर उनके स्मरण में २५० पुस्तकें प्रकाशित कराईं ।

इन महानुभावों को धन्यवाद है ।

साधु भगवानसिंह,

भगवानपुरा, ऋषिकेश ।

* श्रीगणेशाय नमः *

तेजोबिन्दु-उपनिषत्

(भाषा टीका)

यत्र चिन्मात्रकलना यात्यपह्नवमञ्जसा ।

तच्चिन्मात्रमखण्डैकरसं ब्रह्म भवाम्यहम् ॥

अर्थ—जिस चैतन्य स्वरूप में संसार की रचना शीघ्र रात्रि दिन हो रही है। सो चिन्मात्र अखंड एकरस व्यापक ब्रह्म 'मैं' हूं।

ओ३म् ॥ सह नाववत्विति शांतिः॥

ओम् तेजोबिन्दुः परं ध्यानं विश्वात्महृदि संस्थितम् ।

आणवं शांभवं शान्तं स्थूलं सूक्ष्मं परं च यत् ॥१॥

अर्थ—विश्वात्मा हृदय में स्थित हुआ ओमकार स्वरूप तेजोबिन्दु परम ध्यान रूप है। जो अणुरूप (सूक्ष्म-

रूप) है सो शंभु (कल्याण) रूप है, शांत स्वरूप है, स्थूल सूक्ष्म से पर है ॥१॥

दुःखाढ्यं च दुराराध्यं दुष्प्रेक्ष्यं मुक्तमव्ययम् ॥
दुर्लभं तत्स्वयं ध्यानं मुनीनां च मनीषिणाम् ॥२॥

अर्थ—दुख से प्राप्त होने योग्य, कठिनाई से आराधना करने योग्य, कठिनाई से देखने योग्य, मुक्त और अव्यय स्वरूप है। मुनि और विद्वानों को जिसकी आराधना तथा ध्यान दुर्लभ है ॥२॥

यताहारो जितक्रोधो जितसंगो जितेन्द्रियः।
निर्द्वन्द्वो निरहंकारो निराशीरपरिग्रहः ॥३॥

अर्थ—नियमित आहार करने वाला, क्रोध को जीतने वाला, संग का जीतने वाला, इन्द्रियों को जीतने वाला, द्वन्द्व यानी स्त्री संग व राग-द्वेष से रहित, अहंकार रहित, आशा से रहित, परिग्रह रहित (संग्रह का अभाव) ॥३॥

अगम्यागमकर्ता यो गम्याऽगमनमानसः।
मुखे त्रीणि च विदन्ति त्रिधामा हंस उच्यते ॥४॥

जो आगम वेद का कर्ता ईश्वर स्थिर मनसे प्राप्त होने योग्य है और तीनों वेदों को जिसके मुख में जानता है वह तीन धाम वाला (तीन अवस्था वाला) हंस (जीव) कहलाता है ॥४॥

परं गुह्यतमं विद्धि ह्यस्ततन्द्रो निराश्रयः ।

सोमरूपकला सूक्ष्मा विष्णोस्तत्परमं पदम् ।।५।।

उस विष्णु के परम पद को तन्द्रा (आलस) रहित, आश्रय रहित, चन्द्ररूप कला वाला, सूक्ष्म, परम और अत्यन्त गुप्त जानो ।।५।।

त्रिवक्त्रं त्रिगुणं स्थानं त्रिधातुं रूपवर्जितम् ।

निश्चलं निर्विकल्पं च निराकारं निराश्रयम् ।।६।।

सो तीन मुख वाला, तीन गुणों के स्थान रूप, तीन धातु वाला, रूप रहित, निश्चल, विकल्प रहित, आकार रहित और आश्रय रहित है ।

उपाधिरहितं, स्थानं वाङ्मनोऽतीतगोचरम् ।

स्वभावं भावसंग्राह्यमसंघातं पदाच्युतम् ।।७।।

अर्थ—उपाधि रहित, स्थान, वाणी और मन का अविषय यानी ज्ञान से ग्रहण करने योग्य स्वभाव वाला, शरीर रहित और अविनाशी पद है ।।७।।

अनानानन्दनातीतं दुष्प्रेक्ष्यं मुक्तमव्ययम् ।

चिन्त्यमेवं विनिर्मुक्तं शाश्वतं ध्रुवमच्युतम् ।।८।।

अर्थ—वह अद्वितीय, आनन्द (विषय) से अतीत, दुख से देखने योग्य, मुक्त, अव्यय स्वरूप, चिंतवन करने योग्य विशेष मुक्त, सनातन (अनादि ब्रह्म) अचल और नाश-रहित है ।।८।।

तद्ब्रह्मणस्तदध्यात्मं तद्विष्णोस्तत्परायणम् ।

अचिन्त्यं चिन्मयात्मानं यद्व्योम परमं स्थितम् ॥९॥

वह ब्रह्म है, वह अध्यात्म है, वह विष्णु है, वह शरण है। चिंतन न किया जाय ऐसा जो चिन्मय आत्मा है, वह परम आकाश रूप से स्थित है ॥९॥

अशून्यं शून्यभावं तु शून्यातीतं हृदि स्थितम् ।

न ध्यानं च न च ध्याता न ध्येयो ध्येव एव च ॥१०॥

अर्थ—वह शून्य से विरुद्ध, शून्य भाव वाला, परन्तु शून्य से अतीत और हृदय में स्थित है। न ध्यान है, न ध्यान करने वाला और न ध्यान करने योग्य ध्येय ही है ॥१०॥

सर्वं च न परं शून्यं नापरं न परात्परम् ।

अचिन्त्यमप्रबुद्धं न सत्यं न परं विदुः ॥११॥

अर्थ—न सर्व है, केवल परम शून्य है। (अनात्म भाव से रहित है) उससे ओम् न पर है न अपर है, न अपर से पर है। वह चिन्तवन करने योग्य नहीं है और न जानने योग्य है। न सत्य है, न पर है ऐसा जानो ॥११॥

मुनीनां संप्रयुक्तं च न देवा न परं विदुः ।

लोभं मोहं भयं दर्पं कामं क्रोधं च किल्विषम् ॥१२॥

अर्थ—मुनियों से मिला हुआ (सम्बन्धित) नहीं। देवताओं से मिला हुआ (सम्बन्धित) नहीं, सर्व के सम्बन्ध से

रहित है सो परे जानो। आत्मज्ञान में प्रतिबन्धी लोभ, मोह, भय, गर्व, काम, क्रोध और पाप ॥१२॥

शीतोष्णो क्षुत्पिपासे च संकल्पकविकल्पकम्।
न ब्रह्मकुलदर्पं च न मुक्तिग्रंथिसंचयम् १३॥

अर्थ—शीत उष्ण (शर्दी गर्मी), भूख-प्यास और संकल्प-विकल्प, ब्रह्मकुल दर्प इन १६ विघ्नों से रहित ब्रह्म है। इन विघ्नों से रहित देवता व मुनि अनुभव कर सकता है। चैतन्य में न ब्रह्मकुल का अहंकार है, न मुक्ति का अभिमान है। देह अभिमान का नाम चित जड़ ग्रंथि है। न चित-जड़ ग्रंथि का संग्रह है ॥१३॥

न भयं न सुखं दुःखं तथा मानावमानयोः।
एतद्भावविनिर्मुक्तं तद्ग्राह्यं ब्रह्म तत्परम् ॥१४॥

अर्थ—न भय है, न सुख-दुख है, न मान-अपमान है। इन भावों से छूटा हुआ वह ब्रह्म ग्रहण करने योग्य है और वही परम है ॥१४॥

अथ समाधि के अंगों का निरूपण

यमो हि नियमस्त्यागो मौनं देशश्च कालतः।
आसनं मूलबंधश्च देहसाम्यं च दृक्स्थितिः ॥१५॥

अर्थ—यम, नियम, त्याग, मौन, देश और काल, आसन, मूलबन्ध देह की समानता और दृष्टि की स्थिति (दृष्टि परिपक्व अवस्था) ॥१६॥

प्राणसंयमनं चैव प्रत्याहारश्च धारणा ।
आत्मध्यानं समाधिश्च प्रोक्तान्यङ्गानि वै क्रमात् ॥१६॥

अर्थ—प्राणायाम, प्रत्याहार और धारणा, आत्मध्यान और समाधि ये क्रम से अंग कहे हैं ॥१६॥

अथ समाधि-अंगार्थं निरूपयामः—

सर्वं ब्रह्मेति वै ज्ञानादिन्द्रियग्रामसंयमः ।
यमोऽयमिति संप्रोक्तोऽभ्यसनीयो मुहुर्मुहुः ॥१७॥

अर्थ—यम का स्वरूप सर्वब्रह्म है, इस प्रकार के ज्ञान से और इन्द्रिय समूह का संयम यह 'यम' कहा जाता है। इस प्रकार कहे हुए यम का बारंबार अभ्यास करना चाहिये ॥१७॥

सजातीयप्रवाहश्च विजातीयतिरस्कृतिः ।
नियमो हि परानन्दो नियमात्क्रियते बुधैः ॥१८॥

अर्थ—नियम का स्वरूप सजातीय (मैं असंग ब्रह्म हूं इस प्रकार) का प्रवाह और विजातीय का (मैं जीव हूं इस प्रकार) तिरस्कार है। यह परानन्द रूप नियम विद्वानोंसे किया जाता है ॥१८॥

त्यागो हि महता पूज्यः सद्यो मोक्षप्रदायकः ॥१९॥

अर्थ—त्याग अत्यन्त पूज्य ब्रह्मविद्या-दाता गुरू, शीघ्र मोक्ष दाता है। त्याग का सेवन करो ॥१९॥

यस्माद्वाचो निवर्तन्ते अप्राप्य मनसा सह ।
यन्मौनं योगिभिर्गम्यं तद्भजेत्सर्वदा बुधः ॥२०॥

अर्थ—मौन मन वाणी सहित जिसको न प्राप्त कर के निवृत्त होती है। ऐसे योगियों को प्राप्त होने योग्य मौन को पण्डित सदा आचरण करे ॥२०॥

वाचो यस्मान्निवर्तन्ते तद्वक्तुं केन शक्यते ।
प्रपञ्चो यदि वक्तव्यः सोऽपि शब्दविवर्जितः ॥२१॥

अर्थ—जो वाणी का विषय न हो उसे कौन कह सकता है। यद्यपि प्रपञ्च का कथन हो सकता है तो वह भी शब्द से रहित अनिवर्चनीय है ॥२१॥

इति वा तद्भवेन्मौनं सर्वं सहजसंज्ञितम् ।
गिरां मौनं तु बालानामयुक्तं ब्रह्मवादिनाम् ॥२२॥

अर्थ—अथवा जो सब स्वाभाविक (स्वतः सिद्ध) हो जाय वह 'मौन' है। वाणी का मौन तो बालकों के लिये है, वह ब्रह्मवादियों के लिये अयोग्य है ॥२२॥

आदावन्ते च मध्ये च जनो यस्मिन्न विद्यते ।
येनेदं सततं व्याप्तं स देशो विजनः स्मृतः ॥२३॥

अर्थ—जिसमें आदि अन्त और मध्य में जगत नहीं है, जिस करके यह हमेशा व्याप्त है, वह देश निर्जन कहा गया है ॥२३॥

कल्पना सर्वभूतानां ब्रह्मादीनां निमेषतः ।
कालशब्देन निर्दिष्टं ह्यखण्डानन्दमद्वयम् ॥२४॥

अर्थ—ब्रह्मा आदि सब भूतों की कल्पना निमेष, (जितनी देरमें पलक बन्द किये जायें उस कालका १६२०० वां भाग) से है और अखण्ड आनन्द अद्वितीय ब्रह्मकाल शब्द से कहा गया है।

आसन का स्वरूप

सुखेनैव भवेद्यस्मिन्नजस्रं ब्रह्मचिन्तनम् ।
आसनं तद्विजानीयादन्यत्सुखविनाशनम् ॥२५॥

अर्थ—जिसमें नित्य ब्रह्मका चिंतवन सुखसे हो उसको आसन जानो जो इससे अन्य प्रकार का है, सो सुख का नाश करने वाला आसन है ॥२५॥

सिद्ध-यासन का स्वरूप

सिद्धये सर्वभूतादि विश्वाधिष्ठानमद्वयम् ।
यस्मिन्सिद्धिं गताः सिद्धास्तत्सिद्धासनमुच्यते ॥२६॥

अर्थ—सिद्धासन सिद्धि प्राप्त करने के लिये सब भूतों के आदि रूप और विश्व का अद्वितीय अधिष्ठान ही आसन है। जिसमें ठहरने से सिद्ध को सिद्धि प्राप्त हुई है, उसको 'सिद्ध-आसन' कहते हैं ॥२६॥

मूल बन्ध स्वरूप

यन्मूलं सर्वलोकानां यन्मूलं चित्तबन्धनम् ।
मूलबन्धः सदा सेव्यो योग्योऽसौ ब्रह्मवादिनाम् ॥२७

अर्थ—जो सर्व लोकों का मूल है, जो चित्त का बन्धन है वही ब्रह्मवादियों के सेवन करने योग्य है ॥२७॥

समान का स्वरूप

अङ्गानां समतां विद्यात्समे ब्रह्मणि लीयते ।
नो चेन्नैव समानत्वमृजुत्वं शुष्कवृक्षवत् ॥२८॥

अर्थ—समान ब्रह्म में लीन होने को अंगोंकी समानता यानी सूखे वृक्ष के समान सीधा रहना समानता है ॥२८॥

दृष्टि का स्वरूप

दृष्टिं ज्ञानमयीं कृत्वा पश्येद्ब्रह्ममयं जगत् ।
सा दृष्टिः परमोदारा न नासाग्रावलोकिनी ॥२६॥

अर्थ—ज्ञानमयी दृष्टि करके जगत को ब्रह्ममय देखे वही दृष्टि परम उदार है। नासिका के अग्रभाग को देखने वाली उदार दृष्टि नहीं ॥२६॥

द्रष्टृदर्शनदृश्यानां विरामो यत्र वा भवेत् ।
दृष्टिस्तत्रैव कर्तव्या न नासाग्रावलोकिनी ॥३०॥

अर्थ—अथवा जहां दृष्टा, दर्शन और दृश्य का अन्त हो जाय वहां ही दृष्टि करनी चाहिये। नासिका के अग्रभाग को देखने वाली नहीं ॥३०॥

प्राणायाम का स्वरूप

चित्तादिसर्वभावेषु ब्रह्मत्वेनैव भावनात् ।
निरोधः सर्ववृत्तीनां प्राणायामः स उच्यते ॥३१॥

अर्थ — चित्तादि सर्व भावोंमें ब्रह्मरूपकी भावना करके सब वृत्तियों का रोकना प्राणायाम कहलाता है ॥३१॥

निषेधनं प्रपञ्चस्य रेचकाख्यः समीरितः ।

ब्रह्मैवास्मीति या वृत्तिः पूरको वायुरुच्यते ॥३२॥

रेचक प्राणायाम का स्वरूप

अर्थ—प्रपञ्च का निषेध करना (व्यवहारिक वृत्तियों का त्याग) ही 'रेचक' कहलाता है ।

पूरक प्राणायाम का स्वरूप

'मैं ब्रह्म ही हूँ' यह वृत्ति पूरक वायु प्राणायाम कहलाता है ॥३२॥

कुम्भक प्राणायाम का स्वरूप

ततस्तद्वृत्तिनैश्चल्यं कुम्भकः प्राणसंयमः ।

अयं चापि प्रबुद्धानामज्ञानां घ्राणपीडनम् ॥३३॥

अर्थ—ब्रह्माकार वृत्ति की निश्चलता कुम्भक प्राणायाम है । यह प्राणायाम ज्ञानियों के लिये है । अज्ञानियों के लिये नासिका को दबाना है ॥३३॥

प्रत्याहार का स्वरूप

विषयेष्वात्मतां दृष्ट्वा मनसश्चित्तरञ्जकम् ।

प्रत्याहारः स विज्ञेयोऽभ्यसनीयो मुहुर्मुहुः ॥३४॥

विषयों में आत्मपना देखकर मनका चैतन्य में रंग (लग) जाना 'प्रत्याहार' जानना चाहिये । उसका बारम्बार अभ्यास करना चाहिये ॥३४॥

धारणा का स्वरूप

यत्र यत्र मनो याति ब्रह्मणस्तत्र दर्शनात् ।
मनसा धारणं चैव धारणा सा परा मता । ३५॥

अर्थ—जहां जहां मन जाता है वहां वहां ब्रह्मके देखने से मन की जो धारणा होती है वह धारणा उत्तम मानी गई है ॥३५॥

ध्यान का स्वरूप

ब्रह्मैवास्मीति सद्वृत्त्या निरालम्बतया स्थितिः ।
ध्यानशब्देन विख्यातः परमानन्ददायकः ॥३६॥

अर्थ—'मैं ही ब्रह्म हूं' इस प्रकार की निरालम्ब सद्-वृत्ति से परमानन्द देने वाली स्थिति का नाम 'ध्यान' है ॥३६॥

समाधि का स्वरूप

निर्विकारतया वृत्या ब्रह्माकारतया पुनः ।
वृत्तिविस्मरणं सम्यक्समाधिरभिधीयते ॥३७॥

अर्थ—निर्विकार बुद्धि वृत्ति ब्रह्माकार होकर फिर वृत्ति का विस्मरण होना समाधि कहलाती है ॥३७॥

इमं चाकृत्रिमानन्दं यावत्साधु समभ्यसेत् ।
लक्ष्यो तावत्क्षणात्पुंसः प्रत्यक्त्वं संभवेत्स्वयम् ॥३८॥

अर्थ—जब तक इस प्रकार के अकृत्रिम (वास्तविक) आनन्द की प्राप्ति न हो तब तक साधु अच्छी प्रकार से अभ्यास करे । जब तक पुरुष का लक्ष्य स्वयं प्रत्यक्ष न हो जावे ॥३८॥

ततः साधननिर्मुक्तः सिद्धो भवति योगिराट् ।
तत्स्वं रूपं भवेत्तस्य विषयो मनसो गिराम् ॥३६॥

अर्थ—बाद योगीराज साधन से मुक्त होकर सिद्ध होता है तब उसके मन और वाणी का अविषय अपना हो जाता है ॥३६॥

समाधौ क्रियमाणे तु विघ्नान्यायान्ति वै बलात् ।
अनुसंधानराहित्यमालस्यं भोगलालसम् ॥४०॥

अर्थ—हे स्वामी कार्तिकेय ! परन्तु समाधि करते हुये विघ्न अवश्य आते हैं । अनुसंधान का त्याग, आलस्य, भोग की इच्छा ॥४०॥

लयस्तमश्च विक्षेपस्तेजः स्वेदश्च शून्यता ।
एवं हि विघ्नबाहुल्यं त्याज्यं ब्रह्मविशारदैः ॥४१॥

अर्थ—लय, अन्धकार, विक्षेप, तेज, पसीना और शून्यता इस प्रकार के बहुत से विघ्न ब्रह्मज्ञानियों को त्यागने चाहिये ॥४१॥

भाववृत्त्या हि भावत्वं शून्यवृत्त्या हि शून्यता ।
ब्रह्मवृत्त्या हि पूर्णत्वं तया पूर्णत्वमभ्यसेत् ॥४२

अर्थ—हे स्वामी कार्तिकेय ! भाववृत्ति से भावना है, शून्यवृत्ति से शून्यता है, ब्रह्मवृत्ति से पूर्णता है । उस ब्रह्मवृत्ति से पूर्णता का अभ्यास करे ॥४२॥

ये हि वृत्तिं विहायैनां ब्रह्माख्यां पावनीं पराम् ।
वृथैव ते तु जीवन्ति पशुभिश्च समा नराः ॥४३॥

अर्थ—ब्रह्मवृत्ति से रहित की श्रुति निन्दा करती है। जो मनुष्य इस परम पवित्र ब्रह्म नाम वाली वृत्ति को छोड़ते हैं वे पशुओं के समान वृथा जीते हैं ॥४३॥

ये तु वृत्तिं विजानन्ति ज्ञात्वा वै वर्धयन्ति ये ।
ते वै सत्पुरुषा धन्या वन्द्यास्ते भुवनत्रये ॥४४॥

अर्थ—ब्रह्मवृत्ति सहित पुरुष की श्रुति स्तुति करती है। जो इस वृत्ति को जानते हैं और जान कर जो उसे बढ़ाते हैं वे पुरुष धन्य हैं तीनों लोकों में वन्दना करने योग्य हैं ॥४४॥

येषां वृत्तिः समा वृद्धा परिपक्वा च सा पुनः ।
ते वै सद्ब्रह्मतां प्राप्ता नेतरे शब्दवादिनः ॥४५॥

अर्थ—हे स्वामी कार्तिकेय ! पुनः जिनकी वृत्ति समान होकर वृद्ध हुई है और परिपक्व हुई है वे ही सत्य ब्रह्म भाव को प्राप्त हुये हैं और दूसरे ब्रह्म शब्द वादी नहीं प्राप्त होते ॥४५॥

कुशला ब्रह्मवार्तायां वृत्तिहीनाः सुरागिणः ।
तेऽप्यज्ञानतया नूनं पुनरायान्ति यान्ति च ॥४६॥

अर्थ—ब्रह्मवार्तामें कुशल वृत्तिहीन और राग जो वाले हैं वे भी अज्ञानता के कारण बारम्बार जन्म-मरणमें आते जाते हैं ॥४६॥

निमिषार्धं न तिष्ठन्ति वृत्तिं ब्रह्ममयीं विना ।
यथा तिष्ठन्ति ब्रह्माद्याः सनकाद्याः शुकादयः ॥४७॥

अर्थ—वे (ज्ञानी) ब्रह्ममति वृत्ति के विना आधे क्षण भी नहीं टिकते जैसे कि ब्रह्मादि, सनकादि, शुकादि टिकते हैं ॥४७॥

कारणं यस्य वै कार्यं कारणं तस्य जायते ।
कारणं तत्वतो नश्येत्कार्याभावे विचारतः ॥४८॥

अर्थ—कार्य कारण भाव में विचार की कर्तव्यता—जिसका कार्य कारणरूप होता है उसके कार्य में कारण ही उत्पन्न होता है। इस प्रकार कार्य के अभाव का विचार करने से स्वरूप से कारण नाश हो जाता है। पुत्र के होने से पिता की सिद्धि है, पुत्र के अभाव से पिता शब्द की जनक में प्रवृत्ति नहीं ऐसा जानो ॥४८॥

अथ शुद्धं भवेद्वस्तु यद्वै वाचामगोचरम् ।
उदेति शुद्धचित्तानां वृत्तिज्ञानं ततः परम् ॥४९॥

अर्थ—जब वाणी की अविषय रूप वस्तु शुद्ध होती है तब शुद्ध चित्त वालों को परम वृत्ति का ज्ञान उदय होता है ॥४९॥

भावितं तीव्रवेगेन यद्वस्तु निश्चयात्मकम् ।
दृश्यं ह्यदृश्यतां नीत्वा ब्रह्माकारेण चिन्तयेत् ॥५०॥

तीव्र वेग से भावना की हुई जो वस्तु निश्चय स्वरूप है उसका दृश्य अदृश्य करके ब्रह्माकार से चिन्तवन करे ॥५०॥

विद्वान्नित्यं सुखे तिष्ठेद्धिया चिद्रसपूर्णया ।

अर्थ—बुद्धि को चैतन्य रस से पूर्ण करके विद्वान नित्य सुख में विश्राम करे ॥५१॥

इति श्री तेजोबिन्दु उपनिषद की हिन्दी भाषा ब्रह्म-श्रोत्री, ब्रह्मनेष्ठी, विद्वद्वर-वरिष्ठ, परिव्राजकार्य देवहरि शिष्येण साधु भगवान हरिणा निर्मलाश्रमस्य लिपीकृता । प्रथमाध्यायो समापितः ॥

द्वितीय अध्याय

ओ३म् सहनाववतु

अथ ह कुमारः शिवं पप्रच्छाऽखण्डैकरसचिन्मात्र-स्वरूपमनुब्रूहीति ॥

सहोवाच परमः शिवः

अखण्डैकरसं दृश्यमखण्डैकरसं जगत् ।
अखण्डैकरसं भावमखण्डैकरसं स्वयम् ॥१॥

अर्थ—कुमार ने शिव जी से पूछा कि अखण्ड एक रस चिन्मात्र का स्वरूप कहिये ।

परम शिव उवाच

हे स्वामी कार्तिकेय ! अखण्डैकरस दृश्य कल्पित है ।

अखण्डैकरस जगत् है। अखण्डैकरस भाव (पदार्थ) है। अखण्डैकरस आप ब्रह्म है ॥१॥

अखण्डैकरसो मन्त्र अखण्डैकरसा क्रिया ।
अखण्डैकरसं ज्ञानमखण्डैकरसं जलम् ॥२॥

अर्थ—अखण्डैकरस मन्त्र (वेद) है। अखण्डैकरस यज्ञ स्वरूप होने से क्रिया है, अखण्डैकरस ज्ञान है, अखण्डैकरस जल है ॥२॥

अखण्डैकरसा भूमिरखण्डैकरसं वियत् ।
अखण्डैकरसं शास्त्रमखण्डैकरसा त्रयी ॥३॥

अर्थ—अखण्डैकरस अन्नादि होने से पृथ्वी है, अखण्डैकरस आकाश है। अखण्डैकरस शास्त्र है, अखंडैकरस श्रुति (तीनों वेद) हैं ॥३॥

अखण्डैकरसं ब्रह्म चाखण्डैकरसं व्रतम् ।
अखण्डैकरसो जीव अखण्डैकरसो ह्यजः ॥४॥

अर्थ—हे स्वामी कार्तिकेय! अखण्डैकरस ब्रह्म है, ब्रह्म नाम व्यापक का है। अखण्ड एक रस व्रत है। अखण्ड एक रस जीव है, अखण्ड एक रस अज है ॥४॥

अखण्डैकरसो ब्रह्मा अखण्डैकरसो हरिः ।
अखण्डैकरसो रुद्र अखण्डैकरसोऽस्म्यहम् ॥५॥

अर्थ—अखण्ड एक रस ब्रह्मा है, अखण्ड एक रस विष्णु है। अखण्डैकरस रुद्र (एकादश रुद्र) है। अखण्ड एक रस मैं हूं ॥५॥

अखण्डैकरसो ह्यात्मा ह्यखण्डैकरसो गुरुः।
अखण्डैकरसं लक्ष्यमखण्डैकरसं महः ॥६॥

अर्थ—अखण्ड एक रस आत्मा है, अखण्ड एक रस गुरु है। (गकार नाम अन्धकार का है, रु नाम प्रकाश का है, दोनों की एकता का नाम परम ब्रह्म है सो गुरु शब्द का लक्ष्य है) अखण्ड एक रस लक्ष्य है, अखण्ड एक रस 'महर्लोक है। महर्लोक से चौदह लोकों का ग्रहण है ॥६॥

अखण्डैकरसो देह अखण्डैकरसं मनः।
अखण्डैकरसं चित्तमखण्डैकरसं सुखम् ॥७॥

अर्थ—हे षडानन ! अखण्डैकरस देह (स्वरूप) है। अखण्ड एक रस मन अन्तःकरण है। अखण्ड एक रस चित्त (वृत्ति) है। अखण्डैकरस सुख है ॥७॥

अखण्डैकरसा विद्या अखण्डैकरसोऽव्ययः।
अखण्डैकरसं नित्यमखण्डैकरसं परम् ॥८॥

अर्थ—अखण्ड एक रस विद्या (ब्रह्म विद्या) है। अखण्ड एक रस अव्यय है। अखण्ड एक रस नित्य है, अखण्ड एक रस परम है ॥८॥

अखण्डैकरसं किंचिदखण्डैकरसं परम् ।
अखण्डैकरसादन्यन्नास्ति नास्ति षडानन ॥९॥

अर्थ—अखण्डैकरस किंचित् है, अखण्ड एक रस पर है। षडानन! अखण्ड एक रस से भिन्न कुछ नहीं है, कुछ नहीं है ॥९॥

अखण्डैकरसान्नास्ति अखण्डैकरसान्न हि ।
अखण्डैकरसात्किंचिदखण्डैकरसादहम् ॥१०॥

अर्थ—अखण्डैकरस से भिन्न कुछ नहीं है। अखण्ड एक रस से भिन्न कुछ नहीं है। अखण्डैक रस से किंचित है। अखण्ड एक रस में मैं हूं ॥१०॥

अखण्डैरसं स्थूलं सूक्ष्मं चाखण्डरूपकम् ।
अखण्डैरसं वेद्यमखण्डैरसो भवान् ॥११॥

अर्थ—अखण्ड एक रस स्थूल है, सूक्ष्म अखंड एक रस स्वरूप वाला है। अखण्ड एक रस वेद्य (जानने योग्य) है। अखण्ड एक रस आप है ॥११॥

अखंडैकरसं गुह्यमखंडैकरसादिकम् ।
अखंडैकरसो ज्ञाता ह्यखंडैकरसा स्थितिः ॥१२॥

अर्थ—अखंड एक रस गुह्य (गुप्त) है, अखंड एक रस रसादिक है। अखंड एक रस जानने वाला है, अखंड एक रस स्थिति है ॥१२॥

अखंडैकरसा माता अखंडैकरसः पिता ।
अखंडैकरसो भ्राता अखंडैकरसः पतिः ॥१३॥

अर्थ—अखंड एक रस माता (जननी) है, अखंड एक रस पिता (जनक) है। अखंडैक रस भाई है, अखंड एक रस पति है ॥१३॥

अखंडैकरसं सूत्रमखंडैकरसो विराट् ।
अखंडैकरसं गात्रमखंडैकरसं शिरः ॥१४॥

अर्थ—अखंड एक रस सूत्रात्मा है, अखंड एक रस विराट् (स्थूल सृष्टि समष्टि का अभिमानी) है। अखंड एक रस शरीर है, अखंड एक रस शिर है ॥१४॥

अखंडैकरसं चान्तरखंडैकरसं बहिः ।
अखंडैकरसं पूर्णमखंडैकरसामृतम् ॥१५॥

अर्थ—अखंड एकरस भीतर है, अखंड एकरस बाहर है। अखंड एक रस पूर्ण है, अखंड एक रस अमृत है ॥१५॥

अखंडैकरसं गोत्रमखंडैकरसं गृहम् ।
अखंडैकरसं गोप्यमखंडैकरसश्शशी ॥१६॥

अर्थ—अखंडैकरस गोत्र (जाति अभिमानी देवता) है, अखंडैकरस घर है। अखंड एक रस गुप्त रखने योग्य है, अखंड एक रस चन्द्र है ॥१६॥

अखंडैकरसास्तारा अखंडैकरसो रविः ॥
अखंडैकरसं क्षेत्रमखंडैकरसा क्षमा ॥१७॥

अर्थ—अखंड एक रस तारे हैं, अखंड एक रस सूर्य है। अखंड एक रस क्षेत्र है, अखंड एक रस पृथ्वी है ॥१७॥

अखंडैकरसः शान्त अखंडैकरसोऽगुणः।
अखंडैकरसः साक्षी अखंडैकरसः सुहृत ॥१८॥

अर्थ—अखंड एक रस शान्त है, अखंडैकरस निर्गुण है। अखंड एक रस साक्षी है, अखंड एक रस सुहृत (अन्योपकारी) है ॥१८॥

अखंडैकरसो बन्धुरखंडैकरसः सखा।
अखंडैकरसो राजा अखंडैकरसं पुरम् ॥१९॥

अर्थ—अखंडैकरस बन्धु है, अखंड एक रस सखा है। अखंडैक रस राजा है, अखंडैकरस नगर है ॥१९॥

अखंडैकरसं राज्यमखंडैकरसाः प्रजाः।
अखंडैकरसं तारमखंडैकरसो जपः ॥२०॥

अर्थ—अखंड एक रस राज्य है, अखंडैकरस प्रजा है, अखंडैकरस स्वर (ऊंची ध्वनि) है, अखंडैक रस जप है ॥२०॥

अखण्डैकरसं ध्यानमखण्डैकरसं पदम्।
अखण्डैकरसं ग्राह्यमखण्डैकरसं महत् ॥२१॥

अर्थ—अखण्डैकरस ध्यान है, अखण्ड एक रस पद (चरण व स्थान) है, अखण्डैक रस ग्रहण करने योग्य है, अखण्ड एक रस महान है ॥२१॥

अखण्डैकरसं ज्योतिरखण्डैकरसं धनम् ।
अखण्डैकरसं भोज्यमखण्डैकरसं हविः ॥२२॥

अर्थ—अखण्ड एक रस ज्योति है, अखण्ड एक रस धन (सम्पत्ति) है, अखण्डैकरस भोजन है, अखण्ड एक रस हवि (चरु) है ॥२२॥

अखण्डैकरसो होम अखण्डैकरसो जपः ।
अखण्डैकरसं स्वर्गमखण्डैकरसः स्वयम् ॥२३॥

अर्थ—अखण्ड एक रस होम (हवन) है, अखण्ड एक रस जप (जिसका अर्थ विचार) है, अखण्डैकरस स्वर्ग (सुख) है, अखण्ड एक रस आप है ॥२३॥

अखण्डैकरसं सर्वं चिन्मात्रमिति भावयेत् ।
चिन्मात्रमेव चिन्मात्रमखण्डैकरसं परम् ॥२४॥

अर्थ—सब कुछ अखण्डैकरस और चिन्मात्र है, इस प्रकार भावना करे। अखण्ड एक ऐसा परम चिन्मात्र ही चिन्मात्र है ॥२४॥

भववर्जितचिन्मात्रं सर्वं चिन्मात्रमेव हि ।
इदं च सर्वं चिन्मात्रमयं चिन्मयमेव हि ॥२५॥

अर्थ—संसारसे रहित चिन्मात्र है और सब (संसारी) चिन्मात्र ही है। यह सब चिन्मात्र मय निश्चय चिन्मय ही है ॥२५॥

आत्मभावं च चिन्मात्रमखण्डैकरसं विदुः ।
सर्वलोकं च चिन्मात्रं त्वत्ता मत्ता च चिन्मयम् ॥२६

अर्थ—आत्मभाव और चिन्मात्र अखण्ड एक रस जानो, सर्वलोक के चिन्मात्र तू (त्वं पने) को, मैं (अहं पने) को चिन्मय जानो ॥२६॥

आकाशो भूर्जलं वायुरग्निर्ब्रह्मा हरिः शिवः ।
यत्किंचयन्न किंचिच्च सर्वं चिन्मात्रमेव हि ॥२७॥

अर्थ—आकाश, भूमि, जल, वायु, अग्नि, विष्णु, शिव, किंचित् तथा जो किंचित नहीं है सब चिमन्मात्र ही है ॥२७॥

अखण्डैकरसं सर्वं यच्चिन्मात्रमेव हि ।
भूतं भव्यं भविष्यच्च सर्वं चिन्मात्रमेव हि ॥२८॥

अर्थ—सब अखण्ड एक रस है, जो जो है चिन्मात्र ही है। भूत (बीता हुआ काल), वर्तमान और भविष्यत (आगे का समय) सर्व चिन्मात्र ही है ॥२८॥

द्रव्यं कालं च चिन्मात्रं ज्ञानं ज्ञेयं चिदेव हि ।
ज्ञाता चिन्मात्ररूपश्च सर्वं चिन्मयमेव हि ॥२९॥

अर्थ—द्रव्य और काल चिन्मात्र है। ज्ञान, ज्ञेय चित् ही है। ज्ञाता चिन्मात्र रूप है और सर्व चिन्मय ही है ॥२९॥

संभाषणं च चिन्मात्रं यद्यच्चिन्मात्रमेव हि ।
असच्च सच्च चिन्मात्रमाद्यन्तं चिन्मयं सदा ॥३०॥

अर्थ—बोलना चिन्मात्र है, जो जो है चिन्मात्र ही है, असत् और सत चिन्मात्र है ॥३०॥

आदिरन्तश्च चिन्मात्रं गुरुशिष्यादि चिन्मयम् ।
दृग्दृश्यं यदि चिन्मात्रमस्ति चेच्चिन्मयं सदा ॥३१॥

अर्थ—आदि और अन्त चिन्मात्र है, गुरु शिष्य आदि चिन्मय है। यदि दृष्टि और दृश्य चिन्मात्र है सो सदा चिन्मय ही है ॥३१॥

सर्वाश्चर्यं हि चिन्मात्रं देहं चिन्मात्रमेव हि ।
लिङ्गं च कारणं चैव चिन्मात्रान्न हि विद्यते ॥३२॥

अर्थ—सर्व आश्चर्य ही चिन्मात्र है, देहचिन्मात्र है, लिंग कारण चिन्मात्र है, सिवाय चिन्मात्र के विद्यमान नहीं रहते ॥३२॥

अहं त्वं चैव चिन्मात्रं मूर्तामूर्तादि चिन्मयम् ।
पुण्यं पापं च चिन्मात्रं जीवश्चिन्मात्रविग्रहः ॥३३॥

अर्थ—मैं, तू भी चिन्मात्र है, मूर्त, अमूर्तादि चिन्मय है, पुण्य पाप चिन्मात्र है, जीव चिन्मात्र स्वरूप है ॥३३॥

चिन्मात्रान्नास्ति संकल्पश्चिन्मात्रान्नास्ति वेदनम् ।
चिन्मात्रान्नास्ति मन्त्रादि चिन्मात्रान्नास्ति देवता ॥३४॥

अर्थ—चिन्मात्र के सिवाय संकल्प नहीं है, चिन्मात्र के सिवाय जानना नहीं है, चिन्मात्र के सिवाय मन्त्रादि नहीं है, चिन्मात्र के सिवाय देवता नहीं है ॥३४॥

चिन्मात्रान्नास्ति दिक्पालाश्चिन्मात्राद्व्यावहारिकम् ।
चिन्मात्रात्परं ब्रह्म चिन्मात्रान्नास्ति कोऽपि हि ॥३५॥

अर्थ—चिन्मात्र के सिवाय दिक्पाल नहीं है, चिन्मात्र से व्यवहार है, चिन्मात्र से परब्रह्म है, चिन्मात्र के सिवाय कोई भी नहीं है ॥३५॥

चिन्मात्रान्नास्ति माया च चिन्मात्रान्नास्ति पूजनम् ।
चिन्मात्रान्नास्ति मन्तव्यं चिन्मात्रान्नास्ति सत्यकम् ॥३६

अर्थ—चिन्मात्र के सिवाय माया नहीं है, चिन्मात्र के सिवाय पूजन नहीं है, चिन्मात्र के सिवाय मानने योग्य नहीं है, चिन्मात्र के सिवाय सत्यता नहीं है ॥३६॥

चिन्मात्रान्नास्ति कोषादि चिन्मात्रान्नास्ति वै वसु ।
चिन्मात्रान्नास्ति मौनं च चिन्मात्रान्नास्त्यमौनकम् ॥३७॥

अर्थ—चिन्मात्र के सिवाय कोषादि (खजाना) नहीं है, चिन्मात्र के सिवाय वसु (धन) नहीं है, चिन्मात्र के सिवाय मौन नहीं है, चिन्मात्र के सिवाय अमौन नहीं है ॥३७॥

चिन्मात्रान्नास्ति वैराग्यं सर्वं चिन्मात्रमेव हि ।
यच्च यावच्च चिन्मात्रं यच्च यावच्च दृश्यते ॥३८॥

अर्थ—चिन्मात्र के सिवाय वैराग्य नहीं है, सर्व चिन्मात्र ही है, जो और जितना चिन्मात्र है, जो और जितना दीखता है ॥३८॥

यच्च यावच्च दूरस्थं सर्वं चिन्मात्रमेव हि ।
यच्च यावच्च भूतानि यच्च यावच्च लक्ष्यते ॥३९॥

अर्थ—जो और जितना दूर-स्थित है, जो और जितने भूतरूप हैं, जो और जितने जाने जाते हैं सब चिन्मात्र हैं ॥३९॥

यच्च यावच्च वेदान्ताः सर्वं चिन्मात्रमेव हि ।
चिन्मात्रान्नास्ति गमनं चिन्मात्रान्नास्ति मोक्षकम् ॥४०

अर्थ—जो और जितने वेदान्त शास्त्र हैं सब चिन्मात्र हैं। चिन्मात्र के सिवाय गमन नहीं है, चिन्मात्र के सिवाय मोक्ष नहीं है ॥४०॥

चिन्मात्रान्नास्ति लक्ष्यं च सर्वं चिन्मात्रमेव हि ।
अखण्डैकरसं ब्रह्म चिन्मात्रान्न हि विद्यते ॥४१॥

अर्थ—चिन्मात्र के सिवाय लक्ष्य नहीं है, सब चिन्मात्र ही है। अखण्डैकरस ब्रह्म चिन्मात्र के सिवाय विद्यमान नहीं हैं ॥४१॥

शास्त्रे मयि त्वयीशे च ह्यखण्डैकरसो भवान् ।
इत्येकरूपकतया यो वा जानात्यहं त्विति ॥४२॥
सकृज्ज्ञानेन मुक्तिः स्यात्सम्यग्ज्ञाने स्वयं गुरुः ॥

अर्थ—शास्त्र में, मुझ में, तुझ में और ईश में अखण्डैकरस आप है। इस प्रकार जो एक रूपतासे अथवा मैं ही हूं, इस प्रकार जानता है ॥४२॥

अर्थ—उसको एक बार ही ऐसा जानने से मुक्ति होती है। यथार्थ जानने से वह स्वयं गुरु है।

* ओऽम् शान्तिः *

इति श्री तेजोविन्दूपनिषद् हिन्दी भाषायां कृतायां ब्रह्मश्रोत्री ब्रह्मनेष्ठी श्री स्वामी देव हरि-शिष्येण-भगवान-हरिणा कृतायां द्वितीयो ध्यायः समाप्तिः ॥२॥

तृतीय अध्याय

* श्री गणेशाय नमः ॥ श्री गुरुभ्यो नमः *

कुमारोवाच

कुमारः पितरमात्मानुभवमनुब्रूहीति पप्रच्छ।

अर्थ—कुमार ने पिता से पूछा—आत्मा का अनुभव पुनः कहिये।

स होवाच परः शिवः

परब्रह्म स्वरूपोऽहं परमानन्दमस्म्यहम्।
केवलं ज्ञानरूपोऽहं केवलं परमोऽस्म्यहम् ॥१॥

शिव बोले—मैं परब्रह्म स्वरूप हूं, मैं परमानन्द स्वरूप हूं, मैं केवलज्ञान हूं, मैं केवल परम हूं ॥१॥

केवलं शान्तरूपोऽहं केवलं चिन्मयोऽस्म्यहम्।
केवलं नित्यरूपोऽहं केवलं शाश्वतोऽस्म्यहम् ॥२॥

अर्थ—मैं केवल शान्त स्वरूप हूं, मैं केवल चिन्मय हूं, मैं केवल नित्य स्वरूप हूं, मैं केवल सनातन हूं ॥२॥

केवलं सत्त्वरूपोऽहमहं त्यक्त्वाहमस्म्यहम् ।
सर्वहीनस्वरूपोऽहं चिदाकाशमयोऽस्म्यहम् ॥३॥

अर्थ—मैं केवल सत्य रूप हूं, देह अभिमान को छोड़ कर मैं ही मैं हूं, मैं सर्व रहित स्वरूप हूं (मेरे में सर्व प्रपञ्च नहीं), मैं चिदाकाशमय हूं ॥३॥

केवलं तुर्यरूपोऽस्मि तुर्यातीतोऽस्मि केवलः ।
सदा चैतन्यरूपोऽस्मि चिदानन्दमयोऽस्म्यहम् ॥४॥

अर्थ—मैं केवल तुर्यरूप हूं, मैं केवल तुर्यातीत हूं, मैं सदा चैतन्य हूं, मैं सच्चिदानन्दमय हूं ॥४॥

केवलाकाररूपोऽस्मि शुद्धरूपोऽस्म्यहं सदा ।
केवलं ज्ञानरूपोऽस्मि केवलं प्रियमस्म्यहम् ॥५॥

अर्थ—मैं केवल आकाररूप हूं, मैं सदा शुद्धरूप हूं, मैं केवल ज्ञान स्वरूप हूं, मैं केवल प्रियरूप हूं ॥५॥

निर्विकल्पस्वरूपोऽस्मि निरीहोऽस्मि निरामयः ।
सदाऽसङ्गस्वरूपोऽस्मि निर्विकारोऽहमव्ययः ॥६॥

अर्थ—मैं निर्विकल्प स्वरूप हूं, चेष्टा-रहित हूं, रोग-रहित हूं; सदा असंग स्वरूप हूं, मैं अव्यय निर्विकार हूं ॥६॥

सदैकरसरूपोऽस्मि सदा चिन्मात्रविग्रहः ।
अपरिच्छिन्नरूपोऽस्मि ह्यखण्डानन्दरूपवान् ॥७॥

अर्थ—मैं सदा एक रस रूप हूं, सदा चिन्मात्र स्वरूप हूं, अपरिच्छिन्न रूप हूं, अखण्ड आनन्द वाला हूं ॥७॥

सत्परानन्दरूपोऽस्मि चित्परानन्दमस्म्यहम् ।
अन्तरान्तररूपोऽहमवाङ्मनसगोचरः ॥८॥

अर्थ—मैं सत्य परमानन्द-रूप हूं, मैं चित्त परानन्द रूप हूं, मैं वाणी और मन का अविषय भीतर वा बाहिर का रूप हूं ॥८॥

आत्मानन्दस्वरूपोऽहं सत्यानन्दोऽस्म्यहं सदा ।
आत्मारामस्वरूपोऽस्मि ह्यहमात्मा सदाशिवः ॥९॥

अर्थ—मैं आत्मानन्द स्वरूप हूं, मैं सदा सत्यानन्द हूं, मैं आत्माराम स्वरूप हूं, मैं ही सदा शिव आत्मा हूं ॥९॥

आत्मप्रकाशरूपोऽस्मि ह्यात्मज्योती रसोऽस्म्यहम् ।
आदिमध्यान्तहीनोऽस्मि ह्याकाशसदृशोऽस्म्यहम् ॥१०

अर्थ—मैं आत्म प्रकाशरूप हूं, मैं आत्म ज्योति रस हूं, मैं आदि मध्य और अन्त से रहित हूं, मैं आकाश के समान हूं ॥१०॥

नित्यशुद्धचिदानन्दसत्तामात्रोऽहमव्ययः ।
नित्यबुद्धविशुद्धैकसच्चिदानन्दमस्म्यहम् ॥११॥

अर्थ—मैं नित्य शुद्ध बुद्ध, चित् आनन्द, अव्यय सत्ता मात्र हूं, मैं नित्य बुद्ध विशुद्ध एक सच्चिदानन्द हूं ॥११॥

नित्यशेषस्वरूपोऽस्मि सर्वातीतोऽस्म्यहं सदा ।
रूपातीतस्वरूपोऽस्मि परमाकाशविग्रहः ॥१२॥

अर्थ—मैं नित्य शेष स्वरूप हूं, मैं सदा सबसे अतीत हूं, रूप से अतीत स्वरूप, परमाकाश स्वरूप हूं ॥१२॥

भूमानन्दस्वरूपोऽस्मि भाषाहीनोऽस्म्यहं सदा ।
सर्वाधिष्ठानरूपोऽस्मि सर्वदा चिद्घनोऽस्म्यहम् ॥१३॥

अर्थ—मैं भूमा आनन्द स्वरूप हूं, मैं सदा भाषारहित हूं, सर्व का अधिष्ठानरूप हूं, मैं हमेशा चैतन्यघन हूं ॥१३॥

देहभावविहीनोऽस्मि चिन्ताहीनोऽस्मि सर्वदा ।
चित्तवृत्तिविहीनोऽहं चिदात्मैकरसोऽस्म्यहम् ॥१४॥

अर्थ—मैं देहभाव से रहित हूं, हमेशा चिंता से रहित हूं, मैं चित्तवृत्ति रहित हूं, एक रस चिदात्मा हूं ।

सर्वदृश्यविहीनोऽहं दृग्रूपोऽस्म्यहमेव हि ।
सर्वदा पूर्णरूपोऽस्मि नित्यतृप्तोऽस्म्यहं सदा ॥१५॥

अर्थ—मैं सब दृश्य से रहित हूं, मैं ही दृष्टिरूप हूं, हमेशा पूर्णरूप हूं, मैं सदा नित्य तृप्त हूं ॥१५॥

अहं ब्रह्मैव सर्वं स्यादहं चैतन्यमेव हि ।
अहमेवाहमेवाऽस्मि भूमाकाशस्वरूपवान् ॥१६॥

अर्थ—मैं ब्रह्म ही सर्व रूप हूं, मैं चैतन्य ही हूं, भूमि आकाश स्वरूप मैं ही हूं ॥१६॥

अहमेव महानात्मा ह्यहमेव परात्परः ।

अहमन्यवदाभामि ह्यहमेव शरीरवत् ॥१७॥

अर्थ—मैं महान आत्मा हूं, मैं ही पर से पर हूं, मैं ही अन्य के समान भासता हूं, मैं ही शरीर के समान हूं ॥१७॥

अहं शिष्यवदाभामि ह्ययं लोकत्रयाश्रयः ।

अहं कालत्रयातीत अहं वेदैरुपासितः ॥१८॥

अर्थ—मैं शिष्य के समान भासता हूं, तीनों लोकों का आश्रय हूं, मैं तीनों काल से अतीत हूं, मैं वेदों से उपासना किया जाता हूं ॥१८॥

अहं शास्त्रेण निर्णीत अहं चित्ते व्यवस्थितः ।

मत्यक्तं नास्ति किंचिद्वा मत्यक्तं पृथिवी च वा ॥१९

अर्थ—मैं शास्त्र से निर्णय किया गया हूं, मैं चित्त में स्थित हूं, मेरे सिवाय कुछ नहीं है, मेरे सिवाय पृथ्वी नहीं है ॥१९॥

मयातिरिक्तं यद्यद्वा तत्तन्नास्तीति निश्चिनु ।

अहं ब्रह्मास्मि सिद्धोऽस्मि नित्यशुद्धोऽस्म्यहं सदा ॥२०

अर्थ—मेरे सिवाय जो जो है वह नहीं है, ऐसा निश्चय करो मैं ब्रह्म हूं, सिद्ध हूं, सदा नित्य शुद्ध हूं ॥२०॥

निर्गुणः केवलात्मास्मि निराकारोऽस्म्यहं सदा ।

केवलं ब्रह्ममात्रोऽस्मि ह्यजरोऽस्म्यमरोऽस्म्यहम् ॥२१॥

अर्थ—मैं निगुर्ण केवल आत्मा हूं, मैं सदा निराकार हूं, केवल ब्रह्ममात्र हूं, मैं अजर अमर हूं, ॥२१॥

स्वयमेव स्वयं भामि स्वयमेव सदात्मकः ।
स्वयमेवात्मनि स्वस्थः स्वयमेव परा गतिः ॥२२॥

अर्थ—मैं आप ही आप भासता हूं, आप ही सद्‌आत्म-स्वरूप हूं, आप ही आत्मामें स्थित आप ही परम गति हूं ॥२२॥

स्वयमेव स्वयं भुञ्जे स्वयमेव स्वयं रमे ।
स्वयमेव स्वयं ज्योतिः स्वयमेव स्वयं महः ॥२३॥

अर्थ—आप ही आप भोक्ता हूं, आप ही आप रमण करता हूं, आप ही ज्योति हूं, आप ही महान हूं ॥२३॥

स्वस्यात्मनि स्वयं रंस्ये स्वात्मन्येव विलोकये ।
स्वात्मन्येव सुखासीनः स्वात्ममात्रावशेषकः ॥२४॥

अर्थ—आप ही अपने आत्मा को देखने को अपने आत्मा में आप प्रवेश करता हूं। अपने आत्मा की विशेष मात्र से अपने आत्मा में ही सुख से बैठा हुआ हूं ।

स्वचैतन्ये स्वयं स्थास्ये स्वात्मराज्ये सुखे रमे ।
स्वात्मसिंहासने स्थित्वा स्वात्मनोऽन्यन्न चिन्तये ॥

अर्थ—अपने चैतन्य में आप स्थित होता हूं, अपने आत्म-राज्य के सुख में रमण करता हूं, अपने आत्मा के सिंहासन पर बैठकर अपने आत्मा से अन्य का चिंतवन नहीं करता ॥२५॥

चिद्रूपमात्रं ब्रह्मैव सच्चिदानन्दमद्वयम् ।
आनन्दघन एवाहमहं ब्रह्मास्मि केवलम् ॥२६॥

अर्थ—चित्तरूप मात्र ब्रह्म ही सच्चिदानन्द रूप अद्वितीय आनन्दघन मैं हूं। मैं केवल ब्रह्म हूं ॥२६॥

सर्वदा सर्वशून्योऽहं सर्वात्मानन्दवानहम् ।
नित्यानन्दस्वरूपोऽहमात्माकाशोऽस्मि नित्यदा ॥२७

अर्थ—मैं हमेशा सब से शून्य हूं, मैं सर्व आत्मानन्द वाला हूं, मैं नित्यानन्द स्वरूप हूं, मैं नित्य आत्मप्रकाश रूप हूं ॥२७॥

अहमेव हृदाकाशश्चिदादित्यस्वरूपवान् ।
आत्मनात्मनि तृप्तोऽस्मि ह्यरूपोऽस्म्यहमव्ययः ॥२८॥

अर्थ—मैं ही चैतन्य आदित्य स्वरूप वाला हृद्याकाश हूं। आत्मा से आत्मा में तृप्त हूं। मैं अव्यय रूप रहित स्वरूप वाला हूं ॥२८॥

एक संख्याविहीनोऽस्मि नित्यमुक्तस्वरूपवान् ।
आकाशादपि सूक्ष्मोऽहमाद्यन्ताभाववानहम् ॥२९॥

अर्थ—मैं नित्य मुक्त स्वरूप वाला एक की संख्या से रहित हूं, मैं आकाश से भी सूक्ष्म हूं, मैं आदि अन्त के अभाव वाला हूं ॥२९॥

सर्वप्रकाशरूपोऽहं परावरसुखोऽस्म्यहम् ।
सत्तामात्रस्वरूपोऽहं शुद्धमोक्षस्वरूपवान् ॥३०॥

अर्थ—मैं सर्वप्रकाशरूप हूं, मैं पर अवर सुख हूं, मैं सत्तामात्र स्वरूप हूं, शुद्ध मोक्ष स्वरूप वाला हूं ॥३०॥

सत्यानन्दस्वरूपोऽहं ज्ञानानन्दघनोऽस्म्यहम् ।
विज्ञानमात्ररूपोऽहं सच्चिदानन्दलक्षणः ॥३१॥

अर्थ—मैं सत्य आनन्द स्वरूप हूं, मैं ज्ञान आनन्दघन हूं, मैं सच्चिदानन्द लक्षण वाला विज्ञान मात्र स्वरूप हूं ॥३१॥

ब्रह्ममात्रमिदं सर्वं ब्रह्मणोऽन्यन्न किंचन ।
तदेवाहं सदानन्दं ब्रह्मैवाहं सनातनम् ॥३२॥

अर्थ—यह सर्व ब्रह्म है, ब्रह्म के सिवाय कुछ नहीं है, वह ही सदानन्द मैं हूं, मैं ही सनातन ब्रह्म हूं ॥३२॥

त्वमित्येतत्तदित्येतन्मत्तोऽन्यन्नास्ति किंचन ।
चिच्चैतन्यस्वरूपोऽहमहमेव परः शिवः ॥३३॥

अर्थ—तू और यह, वह और यह मेरे सिवाय कुछ नहीं है, मैं चित् चैतन्य स्वरूप हूं, मैं ही परम शिव हूं ॥३३॥

अतिभावस्वरूपोऽहमहमेव सुखात्मकः ।
साक्षिवस्तुविहीनत्वात्साक्षित्वं नास्ति मे सदा ॥३४॥

अर्थ—अत्यन्त भाव स्वरूप मैं हूं, मैं ही सुख स्वरूप हूं, साक्षी वस्तु के अभाव से मुझ में सदा साक्षी-पना नहीं है ॥३४॥

केवलं ब्रह्ममात्रत्वादहमात्मा सनातनः ।
अहमेवादिशेषोऽहमहं शेषोऽहमेव हि ॥३५॥

अर्थ—केवल ब्रह्ममात्र-पने से मैं सनातन आत्मा हूं, मैं ही आदि शेष हूं, मैं ही मैं शेष हूं ॥३५॥

नामरूपविमुक्तोऽहमहमानन्दविग्रहः ।
इन्द्रियाभावरूपोऽहं सर्वभावस्वरूपकः ॥३६॥

अर्थ—मैं नामरूप रहित हूं, मैं आनन्द स्वरूप हूं, सर्वभाव स्वरूप वाला, इन्द्रियों का अभावरूप हूं ॥३६॥

बन्धमुक्तिविहीनोऽहं शाश्वतानन्दविग्रहः ।
आदिचैतन्यमात्रोऽहमखण्डैकरसोऽस्म्यहम् ॥३७॥

अर्थ—मैं सदानन्द स्वरूप बन्ध और मोक्ष से रहित हूं, मैं आदि चैतन्य मात्र हूं, मैं अखण्डैकरस हूं ॥३७॥

वाङ्मनोऽगोचरश्चाहं सर्वत्र सुखवानहम् ।
सर्वत्र पूर्णरूपोऽहं भूमानन्दमयोऽस्म्यहम् ॥३८॥

अर्थ—मैं वाणी और मन का अविषय हूं, मैं सर्वत्र सुख वाला हूं, मैं सर्वत्र पूर्णरूप हूं, मैं भूमानन्दमय हूं ॥३८॥

सर्वत्र तृप्तरूपोऽहं परामृतरसोऽस्म्यहम् ।
एकमेवाद्वितीयं सद्ब्रह्मैवाहं न संशयः ॥३९॥

अर्थ—मैं सर्व तृप्तरूप हूं, मैं परम अमृत का रस हूं, एक अद्वितीय सत् ब्रह्म मैं ही हूं, इसमें संशय नहीं है ॥३९॥

सर्वशून्यस्वरूपोऽहं सकलागमगोचरः ।
मुक्तोऽहं मोक्षरूपोऽहं निर्वाणसुखरूपवान् ॥४०॥

अर्थ—मैं सर्व वेदों का विषय सर्व शून्य स्वरूप हूं, मैं मुक्त हूं, मैं मोक्षरूप हूं, मैं निर्वाण सुखरूप वाला हूं ॥४०

सत्यविज्ञानमात्रोऽहं सन्मात्रानन्दवानहम् ।
तुरीयातीतरूपोऽहं निर्विकल्पस्वरूपवान् ॥४१॥

अर्थ—मैं सत्य विज्ञान मात्र हूं, मैं सन्मात्र आनन्द वाला हूं, मैं निर्विकल्प स्वरूप तुरीयातीत रूप हूं ॥४१॥

सर्वदा ह्यजरूपोऽहं नीरागोऽस्मि निरञ्जनः ।
अहं शुद्धोऽस्मि बुद्धोऽस्मि नित्योऽस्मि प्रभुरस्म्यहम् ॥४२

अर्थ—मैं सर्वदा अज रूप हूं, निरञ्जन निराग हूं, शुद्ध हूं, बुद्ध हूं, नित्य हूं, मैं प्रभु हूं ॥४२॥

ओङ्कारार्थस्वरूपोऽस्मि निष्कलङ्कमयोऽस्म्यहम् ।
चिदाकारस्वरूपोऽस्मि नाहमस्मि न सोऽस्म्यहम् ॥४३॥

अर्थ—मैं ओंकार का अर्थ स्वरूप हूं, मैं निष्कलङ्क हूं, मैं चैतन्याकार स्वरूप हूं, न मैं हूं न वह मैं हूं ॥४३॥

न हि किंचित्स्वरूपोऽस्मि निर्व्यापारस्वरूपवान् ।
निरंशोऽस्मि निराभासो न मनोनेन्द्रियोऽस्म्यहम् ॥४४॥

अर्थ—व्यापार रहित स्वरूप वाला मैं किंचित् स्वरूप नहीं हूं, मैं आभास रहित हूं और अंश रहित हूं, न मन हूं, न इन्द्रिय हूं ॥४४॥

न बुद्धिर्न विकल्पोऽहं न देहादित्रयोऽस्म्यहम् ।
न जाग्रत्स्वप्नरूपोऽहं न सुषुप्तिस्वरूपवान् ॥४५॥

अर्थ—मैं न बुद्धि हूं, न विकल्प हूं, न मैं देहादि तीनों हूं, मैं जाग्रत स्वप्नरूप नहीं हूं, न सुषुप्ति स्वरूप वाला हूं ॥४५॥

न तापत्रयरूपोऽहं नेषणात्रयवानहम् ।

श्रवणं नास्ति मे सिद्धेर्मननं च चिदात्मनि ॥४६॥

अर्थ—न मैं तीन ताप रूप हूं, न तीन एषणा वाला हूं, मुझ चैतन्य आत्मा में श्रवण और मनन सिद्ध नहीं होता ॥४६॥

सजातीयं न मे किंचिद्विजातीयं न मे क्वचित् ।

स्वगतं च न मे किंचिन्न मे भेदत्रयं क्वचित् ॥४७॥

अर्थ—मुझ में कुछ सजातीय नहीं है, न मुझमें कहीं विजातीय है, न मेरा स्वगत है, न मुझ में कहीं तीनों भेद हैं ॥४७॥

असत्यं हि मनोरूपमसत्यं बुद्धिरूपकम् ।

अहंकारमसद्धीति नित्योऽहं शाश्वतो ह्यजः ॥४८॥

अर्थ—मनरूप असत्य है, बुद्धिरूप असत्य है, अहङ्कार की सिद्धि नहीं है, इस लिये मैं शाश्वत और अजन्मा हूं ॥४८॥

देहत्रयमसद्विद्धि कालत्रयमसत्सदा ।

गुणत्रयमसद्विद्धि ह्यहं सत्यात्मकः शुचिः । ४९॥

अर्थ—तीनों देहों को असत्य जानो, तीनों काल को हमेशा असत् जानो, तीनों गुणों को असत् जानो, क्योंकि मैं ही एक पवित्र सत्य स्वरूप हूं ॥४६॥

श्रुतं सर्वमसद्विद्धि वेदं सर्वमसत्सदा ।
शास्त्रं सर्वमसद्विद्धि ह्यहं सत्यचिदात्मकः ॥५०॥

अर्थ—सब सुने हुये को असत्य जानो, सब वेदों को सदा असत्य जानो, सर्व शास्त्रों को असत्य जानो, मैं ही सत्य चैतन्य स्वरूप हूं ॥५०॥

मूर्तित्रयमसद्विद्धि सर्वभूतमसत्सदा ।
सर्वतत्त्वमसद्विद्धि ह्यहं भूमा सदाशिवः ॥५१॥

अर्थ—तीनों मूर्तियों को असत् जानो, सब भूतों को सदा असत् जानो, तत्वों को असत् जानो, मैं भूमा तीन परिच्छेद से रहित सुखरूप सदा शिव हूं ॥५१॥

गुरुशिष्यमसद्विद्धि गुरोर्मन्त्रमसत्ततः ।
यद्दृश्यं तदसद्विद्धि न मां विद्धि तथाविधम् ॥५२॥

अर्थ—गुरु शिष्य को असत् जानो, गुरु का मन्त्र असत्य जानो, जो दृश्य है उसको असत् जानो, मेरे को ऐसा नहीं जानना, मैं सत्य स्वरूप वाला हूं ॥५२॥

यच्चिन्त्यं तदसद्विद्धि यन्न्याय्यं तदसत्सदा ।
यद्धितं तदसद्विद्धि न मां विद्धि तथाविधम् ॥५३॥

अर्थ—जो चिन्तवन करने योग्य है उसको असत जानो, जो न्याय युक्ति (दृष्टान्त) है उसे सदा असत् जानो, जो हित है उसको असत् जानो, मैं सत्य स्वरूप हूं मेरे को सत्य ही जानो ॥५३॥

सर्वान्प्राणानसद्विद्धि सर्वान्भोगानसत्त्विति ।
दृष्टं श्रुतमसद्विद्धि ओतंप्रोतमसन्मयम् ॥५४॥

अर्थ—सर्व प्राणों को असत् जानो, सर्व भोगों को असत् जानो, देखे हुये और सुने हुये को असत् जानो, ओत-प्रोत सर्व असत्यमय है ॥५४॥

कार्याकार्यमसद्विद्धि नष्टंप्राप्तमसन्मयम् ।
दुःखादुःखमसद्विद्धि सर्वासर्वमसन्मयम् ॥५५॥

अर्थ—कार्याकार्य (कारण) को असत जानो, नष्ट हुये और प्राप्त हुये को असत जानो, दुःख अदुःख को असत् जानो, सर्व और असर्व को असत् जानो ॥५५॥

पूर्णापूर्णमसद्विद्धि धर्माधर्ममसन्मयम् ।
लाभालाभावसद्विद्धि जयाजयमसन्मयम् ॥५६॥

अर्थ—पूर्ण-अपूर्ण को असत् जानो, धर्म-अधर्म को असत् जानो, लाभ-अलाभ को असत् जानो, जीत-हार को असत जानो ॥५६॥

शब्दं सर्वमसद्विद्धि स्पर्शं सर्वमसत्सदा ।
रूपं सर्वमसद्विद्धिं रसं सर्वमसन्मयम् ॥५७॥

अर्थ—सर्व शब्दों को असत् जानो, सर्व स्पर्शों को असत् जानो, सर्व रूप को असत् जानो, सर्व रसों को असत् जानो ॥५७॥

गन्धं सर्वमसद्विद्धि सर्वाज्ञानसन्मयम् ।
असदेव सदा सर्वमसदेव भवोद्भवम् ॥५८॥

अर्थ—सर्व गन्ध को असत्य जानो। सर्व अज्ञान को असत्य जानो। सदा सम्पूर्ण असत्य जानो। संसार की उत्पत्ति असत्य है ॥५८॥

असदेव गुणं सर्वं सन्मात्रमहमेव हि ।
स्वात्ममन्त्रं सदापश्येत्स्वात्ममन्त्रं सदाभ्यसेत् ॥५९॥

अर्थ—सर्व गुण भी असत्य हैं। मैं असत्य मात्र हूं। अपने आत्म मन्त्र को सदा देखे। अपने परम मन्त्र का अभ्यास करे ॥५९॥

अहं ब्रह्मास्मिमन्त्रोऽयं दृश्यपापं विनाशयेत् ।
अहं ब्रह्मास्मि मन्त्रोऽयमन्यमन्त्रं विनाशयेत् ॥६०॥

अर्थ—'मैं ब्रह्म हूं' यह मन्त्र दृश्य पापों का नाश करता है। 'मैं ब्रह्म हूं' यह मन्त्र अन्य मन्त्रों का नाश करता है ॥६०॥

अहं ब्रह्मास्मि मन्त्रोऽयं देहदोषं विनाशयेत् ।
अहं ब्रह्मास्मि मन्त्रोऽयं जन्मपापं विनाशयेत् ॥६१॥

अर्थ—हे स्वामी कार्तिकेय ! 'मैं ब्रह्म' हूं यह मन्त्र देह के दोषों का नाश करता है। 'मैं ब्रह्म हूं' यह मन्त्र जन्म-पाप को नाश करता है ॥६१॥

अहं ब्रह्मास्मि मन्त्रोऽयं मृत्युपाशं विनाशयेत् ।
अहं ब्रह्मास्मि मन्त्रोऽयं द्वैतदुःखं विनाशयेत् ॥६२॥

अर्थ—'मैं ब्रह्म हूं' यह मन्त्र मृत्यु के पाश को नाश करता है। 'मैं ब्रह्म हूं' यह मन्त्र द्वैत के दुःखों को नाश करता है ॥६२॥

अहं ब्रह्मास्मि मन्त्रोऽयं भेदबुद्धिं विनाशयेत् ।
अहं ब्रह्मास्मि मन्त्रोऽयं चिन्तादुःखं विनाशयेत् ॥६३

अर्थ—'मैं ब्रह्म हूं' यह मन्त्र भेद बुद्धिको नाश करता है। 'मैं ब्रह्म हूं' यह मन्त्र चिन्ता के दुःखों को नाश करता है ॥६३॥

अहं ब्रह्मास्मि मन्त्रोऽयं बुद्धिव्याधिं विनाशयेत् ।
अहं ब्रह्मास्मि मन्त्रोऽयं चित्तबन्धं विनाशयेत् ॥६४॥

अर्थ—'मैं ब्रह्म हूं' यह मन्त्र बुद्धि की व्याधिको नाश करता है। 'मैं ब्रह्म हूं' यह मन्त्र चित्त के बन्धन को नाश करता है ॥६४॥

अहं ब्रह्मास्मि मन्त्रोऽयं सर्वव्याधीन्विनाशयेत् ।
अहं ब्रह्मास्मि मन्त्रोऽयं सर्वशोकं विनाशयेत् ॥६५॥

अर्थ—'मैं ब्रह्म हूं' यह मन्त्र सर्व व्याधियों को नाश करता है। 'मैं ब्रह्म हूं' यह मन्त्र सर्व शोक को नाश करता है ॥६५॥

अहं ब्रह्मास्मि मन्त्रोऽयं कामादीन्नाशयेत्क्षणात् ।
अहं ब्रह्मास्मि मन्त्रोऽयं क्रोधशक्तिं विनाशयेत् ॥६६॥

अर्थ—'मैं ब्रह्म हूं' यह मन्त्र कामादि को क्षण में नाश करता है। 'मैं ब्रह्म हूं' यह मन्त्र क्रोध शक्ति का नाश करता है ॥६६॥

अहं ब्रह्मास्मि मन्त्रोऽयं चित्तवृत्तिं विनाशयेत् ।
अहं ब्रह्मास्मि मन्त्रोऽयं संकल्पादीन्विनाशयेत ॥६७॥

अर्थ—'मैं ब्रह्म हूं' यह मन्त्र चित्तवृत्ति का नाश करता है। 'मैं ब्रह्म हूं' यह मन्त्र संकल्पादिकों का नाश करता है ॥६७॥

अहं ब्रह्मास्मि मन्त्रोऽयं कोटिदोषं विनाशयेत् ।
अहं ब्रह्मास्मि मन्त्रोऽयं सर्वतन्त्रं विनाशयेत् ॥६८॥

अर्थ—'मैं ब्रह्म हूं' यह मन्त्र करोड़ों दोषों को नाश करता है। 'मैं ब्रह्म हूं' यह मन्त्र सर्व तन्त्रों का नाश करता है ॥६८॥

अहं ब्रह्मास्मि मन्त्रोऽयमात्माज्ञानं विनाशयेत् ।
अहं ब्रह्मास्मि मन्त्रोऽयमात्मलोकजयप्रदः ॥६९॥

अर्थ—'मैं ब्रह्म हूं' यह मन्त्र आत्मा के अज्ञान को नाश करता है। 'मैं ब्रह्म हूं' यह मन्त्र आत्मलोक की जय देने वाला है ॥६९॥

अहं ब्रह्मास्मि मन्त्रोऽयमप्रतर्क्यसुखप्रदः।
अहं ब्रह्मास्मि मन्त्रोऽयमजडत्वं प्रयच्छति ॥७०॥

अर्थ—'मैं ब्रह्म हूं' यह मन्त्र अखण्ड सुख का देने वाला है। 'मैं ब्रह्म हूं' यह मन्त्र चैतन्यता के देने वला है ॥७०॥

अहं ब्रह्मास्मि मन्त्रोऽयमनात्मासुरमर्दनः।
अहं ब्रह्मास्मि वज्रोऽयमनात्माख्यगिरीन्हरेत् ॥७१॥

अर्थ—हे स्वामी कार्तिकेय! 'मैं ब्रह्म हूं' यह मन्त्र अनात्म रूप असुर को मारने वाला है। 'मैं ब्रह्म हूं' यह मन्त्र अनात्मरूप पर्वत को गिराने वाला है। भाव—हरणे वाला है ॥७१॥

अहं ब्रह्मास्मि मन्त्रोऽयमनात्माख्यासुरान्हरेत्।
अहं ब्रह्मास्मि मन्त्रोऽयं सर्वांस्तान्मोचयिष्यति ॥७२

अर्थ—'मैं ब्रह्म हूं' यह मन्त्र अनात्मा रूपी असुरों को हरण करता है। 'मैं ब्रह्म हूं' यह मन्त्र उन सबसे छुड़ा देता है ॥७२॥

अहं ब्रह्मास्मि मन्त्रोऽयं ज्ञानानन्दं प्रयच्छति।
सप्तकोटिमहामन्त्रं जन्मकोटिशतप्रदम् ॥७३॥

अर्थ—'मैं ब्रह्म हूं' यह मन्त्र ज्ञान आनन्द को देता है हे कुमार ! सात करोड़ महामन्त्र हैं वे सौ करोड़ जन्म देने वाले हैं ॥७३॥

सर्वमन्त्रान्समुत्सृज्य एतं मन्त्रं समभ्यसेत् ।
सद्यो मोक्षमवाप्नोति नात्र सन्देहमण्वपि ॥७४॥

अर्थ—इस लिये इन सर्व मन्त्रों को त्याग कर इसी मन्त्र (अहं ब्रह्मास्मि) का जो अभ्यास करे वह शीघ्र ही मोक्षको प्राप्त करता है । इसमें जरा भी सन्देह नहीं है ॥७४॥

❋ श्री सत्यमस्ति ❋

इति श्री तेजोविन्दूपनिषद हिन्दी भाषायां कृतायां ब्रह्मश्रोत्री ब्रह्मनेष्ठी श्री स्वामी देव हरि–शिष्येण–भगवान–हरिणा कृतायां तृतीयो ध्यायः समापितः ॥३॥

चतुर्थ अध्याय

कुमारः परमेश्वरं पप्रच्छ जीवन्मुक्तविदेहमुक्तयोः स्थितिमनुब्रूहीति ।

कुमार ने परमेश्वर से पूछा —जीवन्मुक्ति और विदेह-मुक्ति की स्थिति कहिये ।

स होवाच परः शिवः

चिदात्माहं परात्माहं निर्गुणोऽहं परात्परः ।
आत्ममात्रेण यस्तिष्ठेत्स जीवन्मुक्त उच्यते ॥१॥

सो परम शिवोवाच—हे कुमार! मैं चिदात्मा हूं, परमात्मा हूं, मैं निर्गुण से परे हूं। ऐसा जान कर जो आत्म-मात्र रूप से स्थित है वह जीवन्मुक्त कहलाता है।

देहत्रयातिरिक्तोऽहं शुद्धचैतन्यमस्म्यहम्।
ब्रह्माहमिति यस्यान्तः स जीवन्मुक्त उच्यते ॥ २॥

अर्थ—मैं तीन देहों से भिन्न हूं, मैं शुद्ध चैतन्य हूं, मैं ब्रह्म हूं। इस प्रकार जिसका निश्चय है, वह जीवन्मुक्त कहलाता है ॥२॥

आनन्दघनरूपोऽस्मि परानन्दघनोऽस्म्यहम्।
यस्य देहादिकं नास्ति यस्य ब्रह्मेति निश्चयः ॥
परमानन्दपूर्णो यः स जीवन्मुक्त उच्यते ॥३॥

अर्थ—'मैं आनन्दघन हूं, परानन्दघन हूं, जिसको देहादिक नहीं है, जो ब्रह्म ही है।' इस प्रकार जिसका निश्चय है, जो परमानन्द पूर्ण है, वह जीवन्मुक्त कहलाता है ॥३॥

यस्य किंचिदहं नास्ति चिन्मात्रेणावतिष्ठते।
चैतन्यमात्रो यस्यान्तश्चिन्मात्रैकस्वरूपवान् ॥४॥

अर्थ—जिसको किंचित अहंकार नहीं है, जो चिन्मात्र रूप से स्थित है, चिन्मात्र जिसका (अन्तः) निश्चय है, जो एक चिन्मात्र स्वरूप वाला है।

सर्वत्र पूर्णरूपात्मा सर्वत्रात्मावशेषकः।
आनन्दरतिरव्यक्तः परिपूर्णश्चिदात्मकः ॥५

अर्थ—जो सर्वत्र पूर्णरूप आत्मा है, सर्वत्र आत्म-स्वरूप वाला, आनन्द रति वाला, अविकारी, परिपूर्ण चित्त स्वरूप वाला है ॥५॥

शुद्धचैतन्यरूपात्मा सर्वसङ्गविवर्जितः ।
नित्यानन्दः प्रसन्नात्मा ह्यन्यचिन्ताविवर्जितः ॥६॥

अर्थ—शुद्ध चैतन्यरूप सर्व संग से रहित, नित्यानन्द स्वरूप, प्रसन्न आत्मा और जो अन्य चिन्ताओंसे रहित है ॥६॥

किंचिदस्तित्वहीनो यः स जीवन्मुक्त उच्यते ।
न मे चित्तं न मे बुद्धिर्नाहंकारो न चेन्द्रियम् ॥७॥

अर्थ—जो किंचित अस्तित्व से भी रहित है, वह जीवन्मुक्त कहलाता है। न मेरा चित्त है, न मेरी बुद्धि और अहंकार है, न इन्द्रियां हैं ॥७॥

न मे देहः कदाचिद्वा न मे प्राणादयः क्वचित् ।
न मे माया न मे कामो न मे क्रोधः परोऽस्म्यहम् ॥८॥

अर्थ—न मेरा कभी देह है, न मेरे कहीं प्राणादिक हैं, न मेरी माया है, न मेरा काम है, न मेरा क्रोध है, मैं पर हूं ॥८॥

न मे किंचिदिदं वापि न मे किंचित्क्वचिज्जगत् ।
न मे दोषा न मे लिंगं न मे चक्षुर्न मे मनः ॥९॥

अर्थ—न मेरा किंचित् यह है, न मेरा कहीं किंचित

जगत है, न मेरा दोष है, न मेरा लिंग (लिंग शरीर) है, न मेरे नेत्र हैं, न मेरा मन है ॥९॥

न मे श्रोत्रं न मे नासा न मे जिह्वा न मे करः ।
न मे जाग्रन्न मे स्वप्नं न मे कारणमण्वपि ॥१०॥

अर्थ—न मेरे कान हैं, न मेरी नासिका है, न मेरी जिह्वा है, न मेरे हाथ हैं, न मेरा जाग्रत है, न मेरा स्वप्न है, न मेरा जरा सा भी कारण है ॥१०॥

न मे तुरीयमिति यः स जीवन्मुक्त उच्यते ।
इदं सर्वं न मे किंचिदयं सर्वं न मे क्वचित् ॥११॥

अर्थ—न मेरा तुरीय है, ऐसा जो है सो जीवन्मुक्त कहलाता है। यह सर्व मेरा कुछ नहीं है, यह सब मेरा कहीं नहीं है ॥११॥

न मे कालो न मे देशो न मे वस्तु न मे मतिः ।
न मे स्नानं न मे संध्या न मे दैवं न मे स्थलम् ॥१२

अर्थ—न मेरा काल है, न मेरा देश है, न मेरी वस्तु है, न मेरी बुद्धि है, न मेरा स्नान है, न मेरी सन्ध्या है, न मेरा दैव है, न मेरा मन्दिर है ॥१२॥

न मे तीर्थं न मे सेवा न मे ज्ञानं न मे पदम् ।
न मे बन्धो न मे जन्म न मे वाक्यं न मे रविः ॥

अर्थ—न मेरा तीर्थ है, न मेरी सेवा है, न मेरा ज्ञान है, न मेरा पद है, न मेरा बन्धन है, न मेरा जन्म है, न मेरा वचन है, न मेरा सूर्य है ॥१३॥

न मे पापं न मे पुण्यं न मे कार्यं न मे शुभम् ।
न मे जीव इति स्वात्मा न मे किंचिज्जगत्त्रयम् ॥१४॥

अर्थ—न मेरा पुण्य है, न मेरा पाप है, न मेरा कार्य है, न मेरा शुभ है, न मेरा जीव है इस प्रकार मेरे स्वात्मा में तीनों जगत् किंचित् भी नहीं हैं ॥१४॥

न मे मोक्षो न मे द्वैतं न मे वेदो न मे विधिः ।
न मेऽन्तिकं न मे दूरं न मे बोधो न मे रहः ॥१५॥

अर्थ—न मेरा मोक्ष है, न मेरा द्वैत है, न मेरा वेद है न मेरी विधि है, न मेरे पास (समीप) है, न मेरा दूर है, न मेरा बोध है, न मेरा एकांत है ॥१५॥

न मे गुरुर्न मे शिष्यो न मे हीनो न चाधिकः ।
न मे ब्रह्म न मे विष्णुर्न मे रुद्रो न चन्द्रमाः ॥१६॥

अर्थ—न मेरा गुरु है, न मेरा शिष्य है, न मेरा न्यून है, न मेरा अधिक है, न मेरा ब्रह्मा है, न मेरा विष्णु है, न मेरा रुद्र है, न मेरा चन्द्रमा है ॥१६॥

न मे पृथ्वी न मे तोयं न मे वायुर्न मे वियत् ।
न मे वह्निर्न मे गोत्रं न मे लक्ष्यं न मे भवः ॥१७॥

अर्थ—न मेरी पृथ्वी है, न मेरा जल है, न मेरा वायु है, न मेरा आकाश है, न मेरी अग्नि है, न मेरा गोत्र है, न मेरा लक्ष्य है, न मेरा संसार है ॥१७॥

न मे ध्याता न मे ध्येयं न मे ध्यानं न मे मनुः ।
न मे शीतं न मे चोष्णं न मे तृष्णा न मे क्षुधा ॥१८॥

अर्थ—न मेरा ध्याता है, न मेरा ध्येय है, न मेरा ध्यान है, न मेरा मन्त्र है, न मेरा शीत है, न मेरा उष्ण है, न मेरी प्यास है, न मेरी भूख है ॥१८॥

न मे मित्रं न मे शत्रुर्न मे मोहो न मे जयः ।
न मे पूर्वं न मे पश्चान्न मे चोर्ध्वं न मे दिशः ॥१६॥

अर्थ—न मेरा मित्र है, न मेरा शत्रु है, न मेरा मोह है, न मेरा जय है, न मेरा आगे है, न मेरा पीछे है, न मेरा ऊपर है, न मेरी दिशा है ॥१६॥

न मे वक्तव्यमल्पं वा न मे श्रोतव्यमण्वपि ।
न मे गन्तव्यमीषद्वा न मे ध्यातव्यमण्वपि ॥२०॥

अर्थ—न मेरा जरा सा भी वक्तव्य (कहने योग्य) है, न मेरा जरा सा भी श्रोतव्य (सुनने योग्य) है, न मेरा थोड़ा सा भी मन्तव्य है, न मेरा जरा सा भी ध्यातव्य है ॥२०॥

न मे भोक्तव्यमीषद्वा न मे स्मर्तव्यमण्वपि ।
न मे भोगो न मे रागो न मे यागो न मे लयः ॥२१॥

अर्थ—न मेरा जरा सा भी भोक्तव्य है, न मेरा जरा सा भी स्मरण करने योग्य है, न मेरा भोग है, न मेरा राग है, न मेरा याग है, न मेरा लय है ॥२१॥

न मे मौर्ख्यं न मे शान्तं न मे बन्धो न मे प्रियम् ।
न मे मोदः प्रमोदो वा न मे स्थूलं न मे कृशम् ॥२२॥

अर्थ—न मेरी मूर्खता है, न मेरी शान्ति है, न मेरा बन्ध है, न मेरा प्रिय है, न मेरा मोद, न मेरा प्रमोद है, न मेरा मोटा है, न मेरा पतला है ॥२२॥

न मे दीर्घं न मे ह्रस्वं न मे वृद्धिर्न मे क्षयः ।
अध्यारोपोऽपवादो वा न मे चैकं न मे बहुः ॥२३॥

अर्थ—न मेरा लम्बा है, न मेरा छोटा है, न मेरी वृद्धि है, न मेरा नाश है, न मेरा अध्यारोप है वा अपवाद है, न मेरा एक है, न मेरा बहुत है ॥२३॥

न मे आन्ध्यं न मान्द्यं न मे पट्विदमण्वपि ।
न मे मांसं न मे रक्तं न मे मेदो न मे ह्यसृक् ॥२४॥

अर्थ—न मेरे में अन्ध-पन है, न मेरे में मन्दपना है, मेरी चातुर्यता जरा सी भी नहीं। न मेरे में मांस है, न मेरे में रक्त है, न मेरे में मेदा है, न मेरे में मज्जा है ॥२४॥

न मे मज्जा न मेऽस्थिर्वा न मे त्वग्धातुसप्तकम् ।
न मे शुक्लं न मे रक्तं न मे नीलं न मे पृथक् ॥२५॥

अर्थ—न मेरी चर्बी है, न मेरी हड्डियां हैं, न मेरी त्वचा है, न मेरे में सात प्रकार की धातु (चार पिता की–तीन माता की) हैं। न मेरे में सफेदपना है, न मेरे में लालपन है, न नीला हूं, न मेरे में पृथक्पना है ॥२५॥

न मे तापो न मे लाभो मुख्यं गौणं न मे क्वचित् ।
न मे भ्रान्तिर्न मे स्थैर्यं न मे गुह्यं न मे कुलम् ॥२६॥

अर्थ—न मेरे ताप है, न मेरा लाभ है, न मेरे में मुख्यपना, न मेरे में गौणपना कुछ भी नहीं है। (मेरे शब्द से अपने स्वरूप का ग्रहण है, न शब्द से निषेध का ग्रहण करना) न मेरे में भ्रान्ति है, न मेरे में स्थिरता है, न मेरा गुप्तपना है, न मेरे कुलपना (पितृवंश का नाम) है ॥२६॥

न मे त्याज्यं न मे ग्राह्यं न मे हास्यं न मे नयः ।
न मे वृत्तं न मे ग्लानिर्न मे शोष्यं न मे सुखम् ॥२७॥

अर्थ—न मेरे में त्याज्य है, न मेरे में ग्राह्य है, न मेरा हास्य (हंसनापन) है, न मेरी नीति है, न मेरे वृत्त (जीविका) है, न मेरे में ग्लानि है, न मेरे में सोच है, न मेरे में सुख है ॥२७॥

न मे ज्ञाता न मे ज्ञानं न मे ज्ञेयं न मे स्वयम् ।
न मे तुभ्यं न मे मह्यं न मे त्वं च न मे त्वहम् ॥२८॥

अर्थ—मेरे में ज्ञाता, ज्ञान, ज्ञेयरूप (त्रिपुटी) नहीं है। न मेरे में अपनापन और परपन और न ममत्वपना

ही है। न मेरा तू है, न मेरा मैं है, (मेरे स्वरूप में कुछ नहीं है) ॥२८॥

न मे जरा न मे बाल्यं न मे यौवनमण्वपि ।
अहं ब्रह्मास्म्हयं ब्रह्मास्म्यहं ब्रह्मेति निश्चयः ॥२६॥

अर्थ—न मेरे में बुढ़ापा है, न मेरे में बालकपन है, यौवन भी जरा सा नहीं है। हे स्वामी कार्तिकेय! मैं ब्रह्म हूं, मैं व्यापक हूं, इस प्रकार निश्चय है ॥२६॥

चिदहं चिदहं चेति स जीवन्मुक्त उच्यते ।
ब्रह्मैवाहं चिदेवाहं परो वाहं न संशयः ॥३०॥

अर्थ—मैं चैतन्य हूं, मैं ब्रह्म हूं, ऐसे निश्चय वाला जीवन्मुक्त कहलाता है। ब्रह्म ही मैं हूं, चित्त ही मैं हूं, पर मैं हूं, इसमें संशय नहीं है।

स्वयमेव स्वयं हंसः स्वयमेव स्वयं स्थितः ।
स्वयमेव स्वयं पश्येत्स्वात्मराज्ये सुखं वसेत् ॥
स्वात्मानन्दं स्वयं भोक्ष्येत्स जीवन्मुक्त उच्यते ॥३१

अर्थ—हे स्वामी कार्तिकेय! आप ही आप हंसरूप है, आप ही आप स्थित, आप ही आपको देखे, अपने आत्म-राज्य में सुख से निवास करे। अपने आत्मानन्द को आप भोगे वह जीवन्मुक्त कहलाता है ॥३१॥

स्वयमेवैकवीरोऽग्रे स्वयमेव प्रभुः स्मृतः ।
स्वस्वरूपे स्वयं स्वप्स्येत्स जीवन्मुक्त उच्यते ॥३२॥

अर्थ—आगे आप ही एक वीर, आप ही प्रभु स्मरण किया गया है। अपने स्वरूप से आप आनन्द माने वह जीवन्मुक्त कहलाता है ॥३२॥

ब्रह्मभूतः प्रशान्तात्मा ब्रह्मानन्दमयः सुखी ।
स्वच्छरूपो महामौनी वैदेही मुक्त एव सः ।।३३॥

अर्थ—ब्रह्म स्वरूप, शान्त आत्मा, ब्रह्मानन्दयुक्त, सुखी, स्वच्छरूप, महामौनी वह विदेहमुक्त है ॥३३॥

सर्वात्मा समरूपात्मा शुद्धात्मा त्वहमुत्थितः ।
एकवर्जित एकात्मा सर्वात्मा स्वात्ममात्रकः ॥३४॥

अर्थ—सर्वात्मा, समान रूप आत्मा, शुद्ध आत्मा और मैं के उत्थानरूप, एकसे रहित, एक आत्मा सबकी आत्मा, अपना आत्ममात्र स्वरूप हूं ॥३४॥

अजात्मा चामृतात्माहं स्वयमात्माहमव्ययः ।
लक्ष्यात्मा ललितात्माहं तूष्णीमात्मस्वभाववान् ॥३५

अर्थ—अज आत्मा और अमृत आत्मा सब मैं हूं। स्वयं निर्विकार आत्मा मैं हूं। लक्ष्य आत्मा, सुन्दर आत्मा मैं हूं। चुपचाप आत्म-स्वभाव वाला मैं हूं ॥३५॥

आनन्दात्मा प्रियो ह्यात्मा मोक्षात्मा बन्धवर्जितः ।
ब्रह्मैवाहं चिदेवाहमेवं वापि न चिन्त्यते ॥३६॥

अर्थ—आनन्द आत्मा, प्रिय आत्मा, मोक्ष आत्मा, बन्ध से रहित ब्रह्म मैं ही हूं अथवा चित् ही मैं हूं। इस प्रकार भी वह चिन्तवन नहीं करता ॥३६॥

चिन्मात्रेणैव यस्तिष्ठेद्वैदेही मुक्त एव सः ॥३७॥

अर्थ—जो चिन्मात्र से स्थित हो वह ही 'विदेह मुक्त' है ॥३७॥

निश्चयं च परित्यज्य अहं ब्रह्मेति निश्चयम् ।
आनन्दभरितस्वान्तो वैदेही मुक्त एव सः ॥३८॥

अर्थ—निश्चय मैं ब्रह्म हूं, इस निश्चय को भी त्याग कर आनन्द से परिपूर्ण अन्तर वाला हो वह ही विदेह-मुक्त है ॥३८॥

सर्वमस्तीति नास्तीति निश्चयं त्यज्य तिष्ठति ।
अहं ब्रह्मास्मि नास्मीति सच्चिदानन्दमात्रकः ॥३९॥

अर्थ—सर्व है तथा नहीं है, इस प्रकार के निश्चय को त्याग कर कहता है मैं ब्रह्म हूं और नहीं हूं। इस प्रकार सच्चिदानन्द स्वरूप मैं हूं ॥३९॥

किंचित्क्वचित्कदाचिच्च आत्मानं न स्पृशत्यसौ ।
तूष्णीमेव स्थितस्तूष्णीं तूष्णीं सत्यं न किंचन ॥४०॥

अर्थ—वह किंचित् कहीं का भी आत्मा 'का स्पर्श नहीं करता। चुप ही स्थित है, चुपचाप और कुछ सत्य नहीं है ॥४०॥

परमात्मा गुणातीतः सर्वात्मा भूतभावनः ।
कालभेदं वस्तुभेदं देशभेदं स्वभेदकम् ॥४१॥

अर्थ—वह परमात्मा गुणों से अतीत सर्वात्मा भूत-भावन है। काल-भेद, वस्तु-भेद. देश-भेद, स्व-भेद ॥४१॥

किंचिद्भेदं न तस्यास्ति किंचिद्वापि न विद्यते ।
अहं त्वं तदिदं सोऽयं कालात्मा कालहीनकः । ४२।

अर्थ—ऐसा उसमें किंचित भी भेद नहीं है अथवा मैं, तू, वह, यह किंचित् भी विद्यमान नहीं है। वह काल का आत्मा काल से रहित है ॥४२॥

शून्यात्मा सूक्ष्मरूपात्मा विश्वात्मा विश्वहीनकः ।
देवात्मा देवहीनात्मा मेयात्मा मेयवर्जितः ॥४३॥

अर्थ—यह शून्य आत्मा, सूक्ष्म रूप आत्मा, विश्व आत्मा विश्व से रहित है। देव आत्मा, देव रहित आत्मा, मेय आत्मा मेय रहित है ॥४३॥

सर्वत्र जडहीनात्मा सर्वेषामन्तरात्मकः ।
सर्वसंकल्पहीनात्मा चिन्मात्रोऽस्मीति सर्वदा ॥४४॥

अर्थ—वह सर्वत्र जड़-रहित आत्मा, सब का अन्तर आत्मा सब संकल्पों से रहित आत्मा है ऐसा मैं हमेशह चिन्मात्र हूं ॥४४॥

केवलः परमात्माहं केवलो ज्ञानविग्रहः ।
सत्तामात्रस्वरूपात्मा नान्यत्किंचिज्जगद्भयम् ॥४५।

अर्थ—मैं केवल परमात्मा हूं, केवल ज्ञान स्वरूप हूं, सत्तामात्र स्वरूप आत्मा हूं, जगत का अन्य किंचित् भी भय

नहीं है ॥४५॥

जीवेश्वरेति वाक् क्वेति वेदशास्त्राद्यहं त्विति ।
इदं चैतन्यमेवेति अहं चैतन्यमित्यपि ॥४६॥

अर्थ—जीव, ईश्वर की वाणी कहां, इसी प्रकार वेद-शास्त्रादि कहां और मैं कहां यह चैतन्य ही है। मैं भी चैतन्य ही हूं ॥४६॥

इति निश्चयशून्यो यो वैदेही मुक्त एव सः ।
चैतन्यमात्रसंसिद्धिः स्वात्मारामः सुखासनः ॥४७॥

अर्थ—जो इस प्रकार के निश्चय से भी शून्य है वह ही विदेह मुक्त है। चैतन्यमात्र संसिद्धि; अपने आत्मामें प्रसन्न सुख से बैठा हुआ ॥४७॥

अपरिच्छिन्नरूपात्मा अणुस्थूलादिवर्जितः ।
तुर्यतुर्यः परानन्दो वैदेही मुक्त एव सः । ४८॥

अर्थ—जो अपरिच्छिन्न अणु स्थूल आदि से रहित तुर्य का तुर्य परानन्द है वह ही विदेह मुक्त है ॥४८॥

नामरूपविहीनात्मा परसंवित्सुखात्मकः ।
तुरीयातीतरूपात्मा शुभाशुभविवर्जितः ॥४९॥

अर्थ—वह नाम रूप रहित, संवित से पर, सुख स्वरूप, तुरीय से अतीत रूप, शुभ अशुभ से रहित है ॥४९॥

योगात्मा योगयुक्तात्मा बन्धमोक्षविवर्जितः ।
गुणागुणविहीनात्मा देशकालादिवर्जितः ॥५०॥

अर्थ—वह योगरूप और योगयुक्त आत्मा, बन्ध मोक्ष से रहित है, गुण अगुण से रहित, देश कालादि से रहित है ॥५०॥

साक्ष्यसाक्षित्वहीनात्मा किंचित्किंचिन्न किंचन ।
यस्य प्रपञ्चमानं न ब्रह्माकारमपीह न ॥५१॥

अर्थ—हे स्वामी कार्तिकेय ! साक्ष्य साक्षी से रहित यदि ऐसा वह कुछ है ऐसा कहो तो ठीक नहीं है वह कुछ भी नहीं है । जिसको न प्रपञ्च का भान है न ब्रह्माकार का भान है ॥५१॥

स्वस्वरूपे स्वयंज्योतिः स्वस्वरूपे स्वयंरतिः ।
वाचामगोचरानन्दो वाङ्मनोगोचरः स्वयम् ॥५२॥

अर्थ—वह अपने स्वरूपमें आप प्रकाशता है । अपने स्वरूप में आप प्रेम करता है । उसका आनन्द वाणी का अविषय है और वह आप वाणी और मनका अविषय है ॥५२

अतीतातीतभावो यो वैदेही मुक्त एव सः ।
चित्तवृत्तेरतीतो यश्चित्तवृत्त्यवभासकः ॥५३॥

अर्थ—इस प्रकार जो पर से भी पर भाव वाला है वह ही विदेह मुक्त है । चित्त वृत्ति से अतीत जो चित्त वृत्ति का प्रकाशक है ॥५३॥

सर्ववृत्तिविहीनात्मा वैदेही मुक्त एव सः ।
तस्मिन्काले विदेहोति देहस्मरणवर्जितः ॥५४॥

अर्थ—जो सर्व वृत्ति से रहित है, वह ही विदेहमुक्त है। उस काल में 'मैं विदेह ही हूँ' इस प्रकार देह स्मरण से वह रहित है ॥५४॥

ईषन्मात्रं स्मृतं चेद्यस्तदा सर्वसमन्वितः ।
परैरदृष्टबाह्यात्मा परमानन्दचिद्घनः ॥५५॥

अर्थ—यदि कुछ भी स्मरण हो तो वह सब से युक्त है यानी विदेह नहीं है। उसका बाहरी स्वरूप दूसरों से अदृष्ट है और वह परमानन्द चैतन्यघन है ॥५५॥

परैरदृष्टबाह्यात्मा सर्ववेदान्तगोचरः ।
ब्रह्मामृतरसास्वादो ब्रह्मामृतरसायनः ॥५६॥

अर्थ—औरों से न दीखता हुआ उसका बाह्यात्मा सब वेदान्तों का विषय है वह ब्रह्म रूप अमृत का रसा-स्वाद है, ब्रह्म रूपी अमृत रसायन है ॥५६॥

ब्रह्मामृतरसासक्तो ब्रह्मामृतरसः स्वयम् ।
ब्रह्मामृतरसे मग्नो ब्रह्मानन्दशिवार्चनः ॥५७॥

अर्थ—ब्रह्म रूपी अमृत रसयुक्त है, ब्रह्मरूप अमृत का रस आप है, ब्रह्मरूप रस में मग्न होकर ब्रह्मानन्द से शिव का पूजन करता है ॥५७॥

ब्रह्मामृतरसे तृप्तो ब्रह्मानन्दानुभावकः ।
ब्रह्मानन्दशिवानन्दो ब्रह्मानन्दरसप्रभः ॥५८॥

अर्थ—ब्रह्मरूप अमृत के रस से तृप्त हुआ वह ब्रह्मानन्द का अनुभव करने वाला है। वह ब्रह्मानन्द और शिवानन्दरूप है और ब्रह्मानन्द रसका प्रकाशन करने वाला है ॥५८॥

ब्रह्मानन्दपरं ज्योतिर्ब्रह्मानन्दनिरन्तरः ।
ब्रह्मानन्दरसान्नादो ब्रह्मानन्दकुटुम्बकः ॥५९॥

अर्थ—ब्रह्मानन्द परम ज्योति है, ब्रह्मानन्द अखण्ड है। ब्रह्मानन्द के रस से ब्रह्मानन्द का कुटुम्बरूप नाद है ॥५९

ब्रह्मानन्दरसारूढो ब्रह्मानन्दैकचिद्घनः ।
ब्रह्मानन्दरसोद्वाहो ब्रह्मानन्दरसंभरः ॥६०॥

अर्थ—वह ब्रह्मानन्द रसयुक्त है, ब्रह्मानन्द एक चित् घन है और ब्रह्मानन्द रस का प्रवाह है, ब्रह्मानन्द रस से पूर्ण है ॥६०॥

ब्रह्मानन्दजनैर्युक्तो ब्रह्मानन्दात्मनि स्थितः ।
आत्मरूपमिदं सर्वमात्मनोऽन्यन्न किंचन ॥६१॥

अर्थ—हे स्वामी कार्तिकेय! वह ब्रह्मानन्द रूपी मित्रों से युक्त है। ब्रह्मानन्द आत्म में स्थित है। उसके लिये यह सब आत्मरूप है। आत्मा से भिन्न कुछ नहीं है ॥६१॥

सर्वमात्माहमात्मास्मि परमात्मा परात्मकः ।
नित्यानन्दस्वरूपात्मा वैदेही मुक्त एव सः ॥६२॥

अर्थ—सब आत्मा है, मैं आत्मा हूं, पर आत्मा हूं, शिवानन्द स्वरूप आत्मा हूं, ऐसा अनुभव करे वह ही विदेह मुक्त है ॥६२॥

पूर्णरूपो महानात्मा प्रीतात्मा शाश्वतात्मकः ।
सर्वान्तर्यामिरूपात्मा निर्मलात्मा निरात्मकः ॥६३॥

अर्थ—जो पूर्णरूप महान आत्मा है, जिसको आत्मा ही प्रिय है। जो शाश्वत सबका अन्तर्यामी रूप है, निर्मल और निरात्मा स्वरूप है ॥६३॥

निर्विकारस्वरूपात्मा शुद्धात्मा शान्तरूपकः ।
शान्ताशान्तस्वरूपात्मा नैकात्मत्वविवर्जितः ॥६४॥

अर्थ– जो निर्विकार स्वरूप, शुद्ध, शान्त रूप वाला तथा शान्त और अशान्त दोनों स्वरूप है, जिसको आत्मा के ज्ञानापना का भाव नहीं है ॥६४॥

जीवात्मपरमात्मेति चिन्तासर्वस्ववर्जितः ।
मुक्तामुक्तस्वरूपात्मा मुक्तामुक्तविवर्जितः ॥६५॥

अर्थ—जो जीव आत्मा परमात्मा इस प्रकार के सब चिंतवन से रहित, मुक्त असुक्त स्वरूप है और मुक्त असुक्त भाव से रहित है ॥६५॥

बन्धमोक्षस्वरूात्मा बन्धमोक्षविवर्जितः ।
द्वैताद्वैतस्वरूपात्मा द्वैताद्वैतविवर्जितः ॥६६॥

अर्थ—बन्ध मोक्ष स्वरूप और बन्ध मोक्ष से रहित, द्वैत अद्वैत स्वरूप और द्वैताद्वैत से रहित है ॥६६॥

सर्वासर्वस्वरूपात्मा सर्वासर्वविवर्जितः ।
मोदप्रमोदरूपात्मा मोदादिविनिवर्जितः ॥६७॥

अर्थ—सर्व असर्व स्वरूप और सर्व असर्व से रहित मोद-प्रमोद रूप और मोद-प्रमोद से रहित है ॥६७॥

सर्वसंकल्पहीनात्मा वैदेही मुक्त एव सः ।
निष्कलात्मा निर्मलात्मा बुद्धात्मा पुरुषात्मकः ॥६८॥

अर्थ—तथा संकल्पों से रहित वह ही विदेहमुक्त है, जो पाप रहित निर्मल प्रबुद्ध पुरुष स्वरूप है ॥६८॥

आनन्दादिविहीनात्मा अमृतात्मामृतात्मकः ।
कालत्रयस्वरूपात्मा कालत्रयविवर्जितः ६९॥

अर्थ—आनन्दादि से रहित अमृतमय और अमृत स्वरूप, तीन काल स्वरूप और तीनों कालों से रहित है ॥६९

अखिलात्मा ह्यमेयात्मा मानात्मा मानवर्जितः ।
नित्यप्रत्यक्षरूपात्मा नित्यप्रत्यक्षनिर्णयः ॥७०॥

अर्थ—जो सम्पूर्ण, प्रमाण न करने योग्य, जो प्रमाण-रूप और प्रमाण से रहित, नित्य-प्रत्यक्ष रूप, नित्य-प्रत्यक्ष निर्णय किया गया है ॥७०॥

अन्यहीनस्वभावात्मा अन्यहीनस्वयंप्रभः ।
विद्याविद्यादिमेयात्मा विद्याविद्यादिवर्जितः ॥७१॥

अर्थ—अन्य से रहित स्वभाव वाला, अन्य से रहित स्वयं प्रकाशरूप, विद्या और अविद्या से अनुमान करने योग्य, परन्तु विद्या अविद्या से रहित है ॥७१॥

नित्यानित्यविहीनात्मा इहामुत्रविवर्जितः ।
शमादिषट्कशून्यात्मा मुमुक्षुत्वादिवर्जितः ॥७२॥

अर्थ—जो नित्य-अनित्य से रहित, यहां और वहां से रहित, शम आदि छहों से (शम, दम, श्रद्धा, समाधानता उपरामता, तितिक्षा षट हैं) रहित है, मुमुक्षता आदि से रहित है ॥७२॥

स्थूलदेहविहीनात्मा सूक्ष्मदेहविवर्जितः ।
कारणादिविहीनात्मा तुरीयादिविवर्जितः ॥७३॥

अर्थ—स्थूल देह से रहित, सूक्ष्म देह से रहित, कारण देह से रहित, तुरीयादि से रहित है ॥७३॥

अन्नकोषविहीनात्मा प्राणकोषविवर्जितः ।
मनःकोषविहीनात्मा विज्ञादिविवर्जितः ॥७४॥

अर्थ—अन्नमय कोष से रहित, प्राणमय कोष से रहित, मनोमय कोषसे रहित, विज्ञानमय कोषसे रहित है ॥७४

आनन्दकोषविहीनात्मा पञ्चकोषविवर्जितः ।
निर्विकल्पस्वरूपात्मा सविकल्पविवर्जितः ॥७५॥

अर्थ—आनन्दमय कोष से रहित तथा पञ्चकोषों से रहित है। जो निर्विकल्प स्वरूप विकल्प से रहित है ॥७५॥

दृश्यानुविद्धहीनात्मा शब्दविद्धविवर्जितः ।
सदा समाधिशून्यात्मा आदिमध्यान्तवर्जितः ॥७६॥

अर्थ—दृश्यके सम्बन्ध से रहित और शब्दके सम्बन्ध से रहित है। जो सदा समाधि से शून्य, आदि मध्य और अन्त से रहित है ॥७६॥

प्रज्ञानवाक्यहीनात्मा अहंब्रह्मास्मिवर्जितः ।
तत्त्वमस्यादिहीनात्मा अयमात्मेत्यभावकः ॥७७॥

अर्थ—'प्रज्ञानमानन्द ब्रह्म' इस वाक्य से रहित है। 'अहं ब्रह्मास्मि' इस वाक्य से रहित है। 'तत्त्वमसि' इस वाक्य से रहित है। 'अयमात्मा ब्रह्म' इस वाक्य से रहित है ॥७७॥

ओंकारवाच्यहीनात्मा सर्ववाच्यविवर्जितः ।
अवस्थात्रयहीनात्मा अक्षरात्माचिदात्मकः ॥७८॥

अर्थ—ओंकार का जो वाचक है उससे रहित, सर्व-वाच्य से रहित, तीनों अवस्थाओं (जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति) से रहित, नाश रहित चेतन स्वरूप है ॥७८॥

आत्मज्ञेयादिहीनात्मा यत्किंचिदिदमात्मकः ।
भानाभानविहीनात्मा वैदेही मुक्त एव सः ॥७९॥

अर्थ—आत्मा अब जिसको ज्ञेय नहीं है, जो कुछ है यह है इस स्वरूप वाला तथा जो भान और अभान से रहित है वह ही विदेहमुक्त है ॥७९॥

आत्मानमेव वीक्षस्व आत्मानं बोधय स्वकम् ।
स्वात्मानं स्वयं भुङ्क्ष्व स्वस्थो भव षडानन ॥८०॥

अर्थ—हे षडानन ! आत्मा को ही देख, अपने आत्मा ही को जान, अपने आत्मा को ही आप भोग और स्वस्थ हो ॥८०॥

स्वात्मनि स्वयं तृप्तः स्वमात्मानं स्वयं चर ।
आत्मानमेव मोदस्व विदेही मुक्तिको भवइत्युपनिषत् ॥

अर्थ—अपने आत्मा में ही आप तृप्त होकर अपने आत्मा में आप विचर । आत्मा में ही मोद आनन्द कर और विदेह मुक्त हो । यह उपनिषत् है ॥

इति श्री तेजोबिन्दूपनिषद हिन्दी भाषायां कृतायां ब्रह्मश्रोत्री ब्रह्मनेष्ठी श्री स्वामी देव हरि-शिष्येण-भगवान-हरिणा कृतायां चतुर्थोऽध्यायः समापितः ॥४॥

पंचम अध्याय

निदाघो नाम वै मुनिः पप्रच्छ ऋभुं भगवन्तमा-त्मानात्मविवेकमनुब्रूहीति ।

निदाघ नाम मुनि ने ऋभु से पूछा—हे भगवन् ! आत्मा अनात्मा का विवक कहिये ।

स होवाच ऋभुः

सर्ववाचोऽवधिर्ब्रह्म सर्वचिन्तावधिर्गुरुः ।
सर्वकारणकार्यात्मा कार्यकारणवर्जितः ॥१॥

ऋभु बोले

अर्थ—ब्रह्म सर्व वाणियों की अवधि है, गुरु सर्व चिन्ताओं की अवधि (समाप्ति) है। आत्मा सब का कारण और कार्य है परन्तु स्वयं कारण से रहित है ॥१॥

सर्वसंकल्परहितः सर्वनादमयः शिवः।
सर्ववर्जितचिन्मात्रः सर्वानन्दमयः परः ॥२॥

अर्थ—वह सर्व संकल्प से रहित, सर्वनादमय शिव है, सर्व से रहित चिन्मात्र है, सर्व आनन्दमय है, पर है ॥२॥

सर्वतेजः प्रकाशात्मा नादानन्दमयात्मकः।
सर्वानुभवनिर्मुक्तः सर्वध्यानविवर्जितः ॥३॥

अर्थ—सर्व तेजरूप प्रकाशरूप है, नाद आनन्दमय आत्मा है, सब अनुभवों से मुक्त, सर्व ध्यान से रहित है ॥३॥

सर्वनादकलातीत एष आत्माहमव्ययः।
आत्मानात्माविवेकादि भेदाभेदविवर्जितः ॥४॥

अर्थ—सब नाद कलाओं से रहित (अतीत), अव्यय और आत्मा अनात्म विवेकादि भेद अभेद से रहित, ऐसा यह आत्मा मैं हूं ॥४॥

शान्ताशान्तादिहीनात्मा नादान्तर्ज्योतिरूपकः।
महावाक्यार्थतो दूरो ब्रह्मास्मीत्यतिदूरतः ॥५॥

अर्थ—शांत अशांत से रहित जो नाद का अन्तर्ज्योति रूप है जो महावाक्य के अर्थ से अति दूर है। 'ब्रह्मास्मि' से अति दूर है ॥५॥

तच्छब्दवर्ज्यस्त्वंशब्दहीनो वाक्यार्थवर्जितः ।
क्षराक्षरविहीनो यो नादान्तर्ज्योतिरेव सः ॥६॥

अर्थ—तत् शब्द से रहित, त्वं शब्द से रहित तथा वाक्य के अर्थ से रहित है, जो क्षर-अक्षर से रहित है, वह ही नाद का अन्तर्ज्योति है ॥६॥

अखण्डैकरसो वाहमानन्दोऽस्मीति वर्जितः ।
सर्वातीतस्वभावात्मा नादान्तर्ज्योतिरेव सः ॥७॥

अर्थ—अखण्ड एक रस अथवा मैं आनन्द हूं, इससे रहित सबसे अतीत स्वभाव वाला वही नाद का अन्तर्ज्योति है ॥७॥

आत्मेति शब्दहीनो य आत्मशब्दार्थवर्जितः ।
सच्चिदानन्दहीनो य एषैवात्मा सनातनः ॥८॥

अर्थ—आत्मशब्द से रहित तथा जो आत्मा के शब्दार्थ से रहित है तथा जो सच्चिदानन्द से रहित है ऐसा ही यह सनातन आत्मा है ॥८॥

स निर्देष्टुमशक्यो यो वेदवाक्यैरगम्यतः ।
यस्य किंचिद्बहिर्नास्ति किंचिदन्तः क्वियन्न च ॥९॥

अर्थ—इसका कथन करना अशक्य है जो वेद वाक्यों से अगम्य है, जिसमे बाहर कुछ नही है, भीतर कुछ नहीं है और न कुछ है ॥९॥

यस्य लिंगं प्रपञ्चं वा ब्रह्मैवात्मा न संशयः ।
नास्ति यस्य शरीरं वा जीवो वा भूतभौतिकः ॥१०॥

अर्थ—जिसका कार्य और कारण ब्रह्म ही है ऐसा आत्मा ही है, इसमें संशय नहीं है। जिसका शरीर नहीं अथवा जीव नहीं है तथा भूत-भौतिक नहीं है ॥१०॥

नामरूपादिकं नास्ति भोज्यं वा भोगभुक्च वा ।
सद्वाऽसद्वा स्थितिर्वापि यस्य नास्ति चराचरम् ॥११॥

अर्थ—जिसका नाम रूप भोज्य भोग अथवा भोक्ता नहीं है जो सत्-असत् नहीं है अथवा जिसकी स्थिति भी नहीं है, जो चराचर नहीं है ॥११॥

गुणं वा विगुणं वापि सम आत्मा न संशयः ।
यस्य वाच्यं वाचकं वा श्रवणं मननं च वा ॥१२॥

अर्थ— जो गुणी अथवा गुण रहित भी नहीं है, वह सम आत्मा ही है, इसमें संशय नहीं है। जिसका वाच्य-वाचक अथवा श्रवण व मनन नहीं है ॥१२॥

गुरुशिष्यादिभेदं वा देवलोकाः सुरासुराः ।
यत्र धर्ममधर्मं वा शुद्धं वाशुद्धमण्वपि ॥१३॥

अर्थ—अथवा जिसमें गुरु-शिष्यादि भेद, देवलोक, सुर असुर अथवा धर्म-अधर्म अथवा शुद्ध-अशुद्ध जरा भी नहीं है ॥१३॥

यत्र कालमकालं वा निश्चयः संशयो न हि ।
यत्र मन्त्रममन्त्रं वा विद्याऽविद्या न विद्यते ॥१४॥

अर्थ—जिसमें काल-अकाल निश्चय या संशय नहीं है, जिसमें मन्त्र-अमन्त्र अथवा विद्या-अविद्या नहीं है ॥१४॥

द्रष्टृदर्शनदृश्यं वा ईषन्मात्रं कलात्मकम् ।
अनात्मेति प्रसङ्गो वा ह्यनात्मेति मनोऽपि वा ॥१५॥

अर्थ—जिसमें द्रष्टा दर्शन दृश्य जरा सा नाम मात्र भी हो तो अनात्मत्व का प्रसंग आता है अथवा आनात्म मन ॥१५

अनात्मेति जगद्वापि नास्ति नास्तीति निश्चिनु ।
सर्वसंकल्पशून्यत्वात्सर्वकार्यविवर्जनात् १६॥

अर्थ—अथवा अनात्म जगत भी जहां नहीं है, कभी भी नहीं है, इस प्रकार निश्चयकर । वह सर्व संकल्प शून्य होने से सर्व कार्य रहित होने से ॥१६॥

केवलं ब्रह्ममात्रत्वान्नास्त्यनात्मेति निश्चिनु ।
देहत्रयविहीनत्वात्कालत्रयविवर्जनात् ॥१७॥

अर्थ—केवल ब्रह्ममात्र होने से अनात्मा नहीं है, ऐसा निश्चय कर, तीनों देह रहित होने से, तीनों काल रहित होने से ॥१७॥

जीवत्रयगुणाभावात्तापत्रयविवर्जनात् ।
लोकत्रयविहीनत्वात्सर्वमात्मेति शासनात् ।१८॥

अर्थ—जीव के तीनों गुणों के अभाव से, तीनों ताप से रहित होने से, तीनों लोक से रहित होने से, इस प्रकार के उपदेशसे यह अनात्म नहीं है, ऐसा निश्चय कर ॥१८

चित्ताभावाच्चिन्तनीयं देहाभावाज्जरा न च ।
पादाभावाद्गतिर्नास्ति हस्ताभावात्क्रिया न च ॥१९

अर्थ—उसके चित्त के अभाव से चिंतवन करने योग्य और देह के अभाव से बुढ़ापा नहीं है, पैरों के अभाव से उसकी गति (चलन) नहीं है, हाथ के अभाव से क्रिया (लेन-देन) नहीं है ॥१९॥

मृत्युर्न जननाभावाद्बुद्ध्यभावात्सुखादिकम् ।
धर्मो नास्ति शुचिर्नास्ति सत्यं नास्ति भयं न च २०

अर्थ—जीव के प्राण अभाव से मृत्यु नहीं है, बुद्धि के अभाव से सुखादिक नहीं है, धर्म नहीं है, पवित्र नहीं है, सत्य नहीं है, भय नहीं है ॥२०॥

अक्षरोच्चारणं नास्ति गुरुशिष्यादि नास्त्यपि ।
एकाभावे द्वितीयं न द्वितीयेऽपि न चैकता ॥२१॥

अर्थ—उसके (आत्मा) के लिये अक्षरों का उच्चारण नहीं है, गुरु शिष्यादि भी नहीं है, एक के अभाव से दूसरा नहीं है, दूसरे के अभाव से एकता नहीं है ॥२१॥

सत्यत्वमस्ति चेत्किंचिदसत्यं न च संभवेत् ।
असत्यत्वं यदि भवेत्सत्यत्वं न घटिष्यति ॥२२॥

अर्थ—सत्यता है तो किंचित असत्य सम्भव नहीं है और यदि असत्यता होवे तो सत्यता न घटेगी ॥२२॥

शुभं यद्यशुभं विद्धि अशुभाच्छुभमिष्यते ।
भयं यद्यभयं विद्धि अभयाद्भयमापतेत् ॥२३॥

अर्थ—यदि शुभ है तो अशुभ से शुभ कहा जाता है, यदि भय है तो अभय जान, अभय से भय प्राप्त होवे है॥२३॥

बन्धत्वमपि चेन्मोक्षो बन्धाभावे क मोक्षता ।
मरणं यदि चेज्जन्म जन्माभावे मृतिर्न च ॥२४॥

अर्थ—बन्ध है तो मोक्ष है, बन्ध के अभाव से मोक्षता नहीं है। यदि मरण है तो जन्म है, जन्म के अभाव से मरण नहीं है ॥२४॥

त्वमित्यपि भवेच्चाहं त्वं नो चेदहमेव न ।
इदं यदि तदेवास्ति तदभावादिदं न च ॥२५॥

अर्थ—यदि तू है तो मैं हूं, तू नहीं तो मैं भी नहीं। यह है तो वह है, वह के अभाव से यह नहीं है ॥२५॥

अस्तीति चेन्नास्ति तदा नास्ति चेदस्ति किंचन ।
कार्यं चेत्कारणं किंचित्कार्याभावे न कारणम् ॥२६॥

अर्थ—है है तो नहीं है, नहीं है तो किंचित है। कार्य है तो कुछ कारण भी है, कार्य के अभाव से कारण नहीं है ॥२५॥

द्वैतं यदि तदाऽद्वैतं द्वैताभावे द्वयं न च ।
दृश्यं यदि दृगप्यस्ति दृश्याभावे दृगेव न ॥२७॥

अर्थ—द्वैत है तो अद्वैत है, द्वैत के अभाव से दोनों नहीं हैं। यदि दृश्य है तो दृष्टा भी है, दृश्य के अभाव से दृष्टा भी नहीं है ॥२७॥

अन्तर्यदि बहिः सत्यमन्ताभावे बहिर्न च ।
पूर्णत्वमस्ति चेत्किंचिदपूर्णत्वं प्रसज्यते ॥२८॥

अर्थ—यदि भीतर है तो बाहिर भी है, भीतर के अभाव से बाहिर नहीं है। पूर्णता है तो कुछ अपूर्णता उत्पन्न करती है ॥२८॥

तस्मादेतत्क्वचिन्नास्ति त्वं चाहं वा इमे इदं ।
नास्ति दृष्टान्तिकं सत्ये नास्ति दार्ष्टान्तिकं ह्यजे ॥२९

अर्थ—इस लिये यह तू, वह मैं, वे ऐसा कहीं नहीं है, सत्य में दृष्टान्त नहीं है, अज में दृष्टान्त नहीं है ॥२९॥

परंब्रह्माहमस्मीति स्मरणस्य मनो न हि ।
ब्रह्ममात्रं जगदिदं ब्रह्ममात्रं त्वमप्यहम् ॥३०॥

अर्थ—परब्रह्म मैं हूं, इस प्रकार स्मरण करने वाला मन नहीं है। यह जगत ब्रह्ममात्र है, मैं और तू भी ब्रह्ममात्र है ॥३०॥

चिन्मात्रं केवलं चाहं नास्त्यनात्मेति निश्चिनु ।
इदं प्रपञ्चं नास्त्येव नोत्पन्नं स्थितं क्वचित् ॥३१॥

अर्थ—मैं केवल चिन्मात्र हूं, अनात्मा नहीं हूं। इस प्रकार निश्चय कर। यह प्रपञ्च है ही नहीं, न कहीं उत्पन्न हुआ है न कहीं स्थित है ॥३१॥

चित्तं प्रपञ्चमित्याहुर्नास्ति नास्त्येव सर्वदा।
न प्रपञ्चं न चित्तादि नाहंकारो न जीवकः ॥३२॥

अर्थ—चित्त को प्रपञ्च कहते हैं वह सर्वदा नहीं है, न प्रपञ्च है, न चित्तादि, न अहंकार न जीव ॥३२॥

मायाकार्यादिकं नास्ति माया नास्ति भयं न हि।
कर्ता नास्ति क्रिया नास्ति श्रवणं मननं न हि ॥३३

अर्थ—माया के कार्यादिक नहीं हैं, माया नहीं है और भय नहीं है, कर्ता नहीं है, क्रिया नहीं है, श्रवण मनन नहीं है ॥३३॥

समाधिद्वितयं नास्ति मातृमानादि नास्ति हि।
अज्ञानं चापि नास्त्येव ह्यविवेकं कदाचन ॥३४॥

अर्थ— दो प्रकार की समाधि नहीं है, प्रमाण आदि भी नहीं है। अज्ञान भी नहीं है, अविवेक भी नहीं है ॥३४॥

अनुबन्धचतुष्कं न संबन्धत्रयमेव न
न गङ्गा न गया सेतुर्न भूतं नान्यदस्ति हि ॥३५॥

अर्थ—चारों अनुबन्ध (अधिकारी, विषय, प्रयोजन, संबंध) और तीन संबंध भी नहीं हैं। न गङ्गा, न गया, न सेतु (सेतुबन्ध रामेश्वर) है, न भूत है, न अन्य ही है ॥३५॥

न भूमिर्न जलं नाग्निर्न वायुर्न च खं क्वचित् ।
न देवा न च दिक्पाला न वेदा न गुरुः क्वचित् ॥३६

अर्थ—न कहीं भूमि है, न जल है, न अग्नि है, न वायु है, न आकाश है, न देवता है, न दिक्पाल है, न वेद है, न गुरु है ॥३६॥

न दूरं नान्तिकं नालं न मध्यं न क्वचित्स्थितम् ।
नाद्वैतं द्वैतसत्यं वा ह्यसत्यं वा इदं न च ॥३७॥

अर्थ—न दूर है, न पास है, न कहीं अन्त है, न मध्य है, न कहीं स्थित है, न द्वैत है, न अद्वैत है, न सत्य है, न असत्य है, न यह है ॥३७॥

बन्धमोक्षादिकं नास्ति सद्वाऽसद्वा सुखादि वा ।
जातिर्नास्ति गतिर्नास्ति वर्णो नास्ति न लौकिकम् ३८

अर्थ—बन्ध व मोक्षादिक नहीं है, सत् या असत् या सुखादि या जाति नहीं है, गति नहीं है, वर्ण नहीं है, न लौकिक है ॥३८॥

सर्वं ब्रह्मेति नास्त्येव ब्रह्म इत्यपि नास्ति हि ।
चिदित्येवेति नास्त्येव चिदहं भाषणं न हि ॥३९॥

अर्थ—सब ब्रह्म ही है; ब्रह्म नहीं है, इस प्रकार भी नहीं है, न चित है और नहीं भी है, मैं चित हूं, इस प्रकार कहना नहीं है ॥३९॥

अहं ब्रह्मास्मि नास्त्येव नित्यशुद्धोऽस्मि न क्वचित् ।
वाचा यदुच्यते किंचिन्मनसा मनुते क्वचित् ॥४०॥

अर्थ—मैं ब्रह्म हूं, ऐसा नहीं है, या मैं नित्य शुद्ध हूं, यह नहीं है। वाणी से कहा हुआ या मन से माना हुआ कुछ भी नहीं है ॥४०॥

बुद्धया निश्चिनुते नास्ति चित्तेन ज्ञायते न हि ।
योगी योगादिकं नास्ति सदा सर्वं सदा न च ॥४१॥

अर्थ—बुद्धि से निश्चय किया हुआ वह नहीं है, चित्त से जाना हुआ नहीं है। योगी का योगादि नहीं है, सदा सब सदा नहीं है ॥४१॥

अहोरात्रादिकं नास्ति स्नानध्यानादिकं न हि ।
भ्रान्तिरभ्रान्तिर्नास्त्येव नास्त्यनात्मेति निश्चिनु ॥४२

अर्थ—वह दिन-रात्रि आदिक नहीं है, स्नान-ध्यान आदिक नहीं है, भ्रान्ति नहीं है, अनात्मा नहीं है, ऐसा निश्चय कर ॥४२॥

वेदः शास्त्रं पुराणं च कार्यं कारणमीश्वरः ।
लोको भूतं जनस्त्वैक्यं सर्वं मिथ्या न संशयः ॥४३

अर्थ—वेद, शास्त्र, पुराण, कार्य, कारण, ईश्वर, लोक, भूत, प्रजा, एकता सब मिथ्या है, इसमें संशय नहीं है ॥४३॥

बन्धो मोक्षः सुखं दुःखं ध्यानं चित्तं सुरासुराः ।
गौणं मुख्यं परं चान्यत्सर्वं मिथ्या न संशयः ॥४४॥

अर्थ—बन्ध-मोक्ष, सुख-दुःख, ध्यान-चित्त, सुर-असुर, गौण-मुख्य, पर और अन्य सब मिथ्या है, इसमें संशय नहीं है ॥४४॥

वाचा वदति यत्किंचित्संकल्पैः कल्पयते च यत् ।
मनसा चिन्त्यते यद्यत्सर्वं मिथ्या न संशयः ॥४५॥

अर्थ—वाणी जो कुछ कहती है, संकल्पों से जो कुछ कल्पा जाता है, मन से जो चिन्तवन किया जाता है सब मिथ्या है इसमें संशय नहीं है ॥४५॥

बुद्ध्या निश्चीयते किंचिच्चित्ते निश्चीयते क्वचित् ।
शास्त्रैः प्रपञ्च्यते यद्यन्नेत्रेणैव निरीक्ष्यते ॥४६॥

अर्थ—जो कुछ बुद्धि से निश्चय किया जाता है; चित्त में जो कुछ निश्चय किया जाता है, शास्त्र से जो रचा जाता है, नेत्रों से जो देखा जाता है ॥४६॥

श्रोत्राभ्यां श्रूयते यद्यदन्यत्सद्भावमेव च ।
नेत्रं श्रोत्रं गात्रमेव मिथ्येति च सुनिश्चितम् ॥४७॥

अर्थ—कानों से जो सुना जाता है, जो अन्य सद्भाव है तथा नेत्र, श्रवण और शरीर ये सब मिथ्या हैं। यह अच्छी प्रकार से निश्चय किया जाता है ॥४७॥

इदमित्येव निर्दिष्टमयमित्येव कल्प्यते ।
त्वमहं तदिदं सोऽहमन्यत्सद्भावमेव च ॥४८॥

अर्थ—यह इस प्रकार ही कहा गया है, यह इस प्रकार ही कल्पा गया है। तू, मैं, वह, यह, वह, मैं और अन्य सद्भाव ॥४८॥

यद्यत्संभाव्यते लोके सर्वसंकल्पसंभ्रमः ।
सर्वाध्यासं सर्वगोप्यं सर्वभोगप्रभेदकम् ॥४९॥

अर्थ—जो कुछ लोक में प्रतीत होता है, सब संकल्प और भ्रम है, सब आभास है, सब गोप्य है, सब भोगों का भेद है ॥४९॥

सर्वदोषप्रभेदाच्च नास्त्यनात्मेति निश्चिनु ।
मदीयं च त्वदीयं च ममेति च तवेति च ॥५०॥

अर्थ—सब दोषोंके भेद से है, अनात्मा नहीं है, ऐसा निश्चय कर मुझ और तुझ में, मेरा और तेरा ॥५०॥

मह्यं तुभ्यं मयेत्यादि तत्सर्वं वितथं भवेत् ।
रक्षको विष्णुरित्यादि ब्रह्मा सृष्टेस्तु कारणम् ॥५१॥

अर्थ—मेरे लिये, तेरे लिये, मुझ से इत्यादि यह सब मिथ्या है, रक्षक विष्णु है इत्यादि ब्रह्मा सृष्टि का कारण है ॥५१॥

संहारे रुद्र इत्येवं सर्वं मिथ्येति निश्चिनु ।
स्नानं जपस्तपो होमः स्वाध्यायो देवपूजनम् ॥५२॥

अर्थ—और संहार रुद्र करता है, यह सब मिथ्या है, ऐसा निश्चय कर स्नान, जप, होम, स्वाध्याय, देवपूजन ॥५२॥

मन्त्रं तन्त्रं च सत्सङ्गो गुणदोषविजृम्भणम् ।
अन्तःकरणसद्भावं अविद्यायाश्च संशयः ॥५३॥

अर्थ—मन्त्र, तन्त्र, सत्संग, गुण–दोष बताना, अन्तःकरण का सद्भाव, अविद्या का सम्भव ॥५३॥

अनेककोटिब्रह्माण्डं सर्वं मिथ्येति निश्चिनु ।
सर्वदेशिकवाक्योक्तिर्येन केनापि निश्चितम् ॥५४॥

अर्थ—तथा अनेक कोटि ब्रह्माण्ड सब मिथ्या है, ऐसा निश्चय कर। सर्व उपदेशकों की वाणी का कथन जिस किसी का निश्चय किया हुआ ॥५४॥

दृश्यते जगति यद्यद्यज्जगति वीच्यते ।
वर्तते जगति यद्यत्सर्वं मिथ्येति निश्चिनु ॥५५॥

अर्थ—जो कुछ जगत में दीखता है, जो कुछ जगतमें देखा जाता है, जो जो जगत में वर्तता है सब मिथ्या है, ऐसा निश्चय कर ॥५५॥

येन केनाचरेणोक्तं येन केन विनिश्चितम् ।
येन केनापि गदितं येन केनापि मोदितम् ॥५६॥

अर्थ—जिस किसी अक्षर करके कहा हुआ, जिस किसी से निश्चय किया हुआ, जिस किसी से कहा हुआ, जिस किसी से विचारा हुआ ॥५६॥

येन केनापि यद्दत्तं येन केनापि यत्कृतम् ।
यत्र यत्र शुभं कर्म यत्र यत्र च दुष्कृतम् ।।५७।।

अर्थ—जिस किसी से जो दिया गया, जिस किसी से जो किया गया, जहां जहां शुभ कर्म है, जहां जहां अशुभ कर्म है ।।५७।।

यद्यत्करोषि सत्येन सर्वं मिथ्येति निश्चिनु ।
त्वमेव परमात्मासि त्वमेव परमो गुरुः ५८।।

अर्थ—जो जो तू करता है सचमुच सब मिथ्या है, ऐसा निश्चय कर । तू ही परमात्मा है, तू ही परमगुरु है ।।५८।।

त्वमेवाकाशरूपोऽसि साक्षिहीनोऽसि सर्वदा ।
त्वमेव सर्वभावोऽसि त्वं ब्रह्मासि न संशयः ।।५९।।

अर्थ—तू ही आकाशरूप है, तू हमेशा साक्षी रहित (आकाश जड़रूप) है, तू ही सर्वभाव है, तू ब्रह्म है, इसमें संशय नहीं है ।।५९।।

कालहीनोऽसि कालोऽसि सदा ब्रह्मासि चिद्घनः ।
सर्वतः स्वस्वरूपोऽसि चैतन्यघनवानसि ।।६०।।

अर्थ—तू काल रहित है, काल है, सदा चैतन्य परब्रह्म है, सर्व प्रकार से तू अपना ही स्वरूप है, तू चैतन्यघन स्वरूप है ।।६०।।

सत्योऽसि सिद्धोऽसि सनातनोऽसि,
मुक्तोऽसि मोक्षोऽसि मुदामृतोऽसि ।

देवोऽसि शान्तोऽसि निरामयोऽसि,

ब्रह्मासि पूर्णोऽसि परात्परोऽसि ॥६१॥

अर्थ—तू सत्य है, तू सिद्ध है, तू सनातन है, तू मुक्त है, तू मोक्ष है, तू आनन्द अमृत है, तू देव है, तू शान्त है, तू निरामय है, तू ब्रह्म है, तू पूर्ण है, तू पर से पर है ॥६१॥

समोऽसि सच्चापि सनातनोऽसि ।

सत्यादिवाक्यैः प्रतिबोधितोऽसि ॥

सर्वाङ्गहीनोऽसि सदा स्थितोऽसि ।

ब्रह्मेन्द्ररुद्रादिविभावितोऽसि ॥६२॥

अर्थ—तू सम है, तू सत्य है, तू सनातन है, सत्य आदि वाक्य से जाना जाता है, तू सब अङ्गों से रहित है, तू सदा स्थित है, तू ब्रह्मा, इन्द्र, रुद्र आदि विशेष भाव वाला है ॥६२॥

सर्वप्रपञ्चभ्रमवर्जितोऽसि ।

सर्वेषु भूतेषु च भासितोऽसि ॥

सर्वत्र संकल्पविवर्जितोऽसि ।

सर्वागमान्तार्थविभावितोऽसि ॥६३॥

अर्थ—तू सर्व प्रपञ्च भ्रम से रहित है, तू सब भूतोंमें प्रकाशमान है, तू सर्वत्र संकल्प से रहित है, तू सर्व वेदान्तों के अर्थ से प्रकाशित है ॥६३॥

सर्वत्र सन्तोषसुखासनोऽसि ।
सर्वत्र गत्यादिविवर्जितोऽसि ॥
सर्वत्र लक्ष्यादिविवर्जितोऽसि ॥
ध्यातोऽसि विष्णवादिसुरैरजस्रम् ॥६४॥

अर्थ—हे स्वामी कार्तिकेय ! सर्वत्र सन्तोष वाला तू सुख से बैठा हुआ, सर्वत्र गति आदि से तू रहित है, सर्वत्र लक्ष्यादि से तू रहित है, तू सर्वदा विष्णु आदि देवताओं से ध्यान किया जाता है ॥६४॥

चिदाकार--स्वरूपोऽसि चिन्मात्रोऽसि निरंकुशः ।
आत्मन्येव स्थितोऽसि त्वं सर्वशून्योऽसि निर्गुणः ॥६५

अर्थ—तू चैतन्याकार स्वरूप है, तू अंकुश (दंड) रहित है, तू चिन्मात्र है, तू आत्मा में ही स्थित है, तू निर्गुण सब से शून्य है ॥६५॥

आनन्दोऽसि, परोऽसि त्वमेक एवाद्वितीयकः ।
चिद्घनान्दरूपोऽसि परिपूर्णस्वरूपकः ॥६६॥

अर्थ—तू आनन्द है, तू पर है, तू एक ही अद्वितीय स्वरूप है, तू चैतन्यघन आनन्द स्वरूप है, तु परिपूर्ण स्वरूप वाला है ॥६६॥

सदसि त्वमसि ज्ञोऽसि सोऽसि जानासि वीक्षसि ।
सच्चिदानन्दरूपोऽसि वासुदेवोऽसि वै प्रभुः ॥६७॥

अर्थ—तू सत्य है, तू तू है, तू ज्ञाता है, तू वह है, तू जानता है, तू देखता है, तू सच्चिदानन्दरूप है, तू निश्चय प्रभु वासुदेव है ॥६७॥

अमृतोऽसि विभुश्चासि चञ्चलो ह्यचलो ह्यसि ।
सर्वोऽसि सर्वहीनोऽसि शान्ताशान्तविवर्जितः ॥६८॥

अर्थ—तू अमृत है, तू विभु है, तू चञ्चल है और अचल है; तू सर्व है, तू सर्व रहित है, तू शान्त है, तू अशान्त से रहित है ॥६८॥

सत्तामात्रप्रकाशोऽसि सत्तासामान्यको ह्यसि ।
नित्यसिद्धिस्वरूपोऽसि सर्वसिद्धिविवर्जितः ॥६९॥

अर्थ—तू सत्तामात्र प्रकाश है, तू ही सामान्य सत्ता है, तू नित्य सिद्ध स्वरूप है, तू सब सिद्धियों से रहित है ॥६९॥

ईषन्मात्रविशून्योऽसि अणुमात्रविवर्जितः ।
अस्तित्ववर्जितोऽसि त्वं नास्तित्वादिविवर्जितः ॥७०॥

अर्थ—तू किंचितमात्र विशेष शून्य है, तू अणुमात्र से रहित है, तू होने-पन (उत्पत्ति) से रहित है, तू नहीं होने-पन आदि से रहित है ॥७०॥

लक्ष्यलक्षणहीनोऽसि निर्विकारो निरामयः ।
सर्वनादान्तरोऽसि त्वं कलाकाष्ठाविवर्जितः ॥७१॥

अर्थ—तू लक्ष्य और लक्षण से रहित है, तू निर्विकार निरामय है, तू सब नादों के भीतर है, तू कला काष्ठा से रहित है ॥७१॥

ब्रह्मविष्ण्वीशहीनोऽसि स्वस्वरूपं प्रपश्यसि ।

स्वस्वरूपावशेषोऽसि स्वानन्दाब्धौ निमज्जसि ।७२॥

अर्थ—तू ब्रह्मा, विष्णु और ईश्वर से रहित है, तू अपने स्वरूप को देखता है, तू अपने स्वरूप का शेष है, तू अपने आनन्द समुद्र में मग्न है ॥७२॥

स्वात्मराज्ये त्वमेवासि स्वयंभावविवर्जितः ।

शिष्टपूर्णस्वरूपाऽसि स्वस्मात्किंचिन्न पश्यसि ॥७३॥

अर्थ—अपने आत्मराज्य में तू आप ही है, तू स्वयं-भाव से रहित है, तू श्रेष्ठपूर्ण स्वरूप है, तू अपने से कुछ भी नहीं देखता ॥७३॥

स्वस्वरूपान्न चलसि स्वस्वरूपेण जृम्भसि ।

स्वस्वरूपादनन्योसि ह्यहमेवासि निश्चितु ॥७४॥

अर्थ—हे स्वामी कार्तिकेय ! तू अपने स्वरूप से नहीं चलता, तू अपने स्वरूप से फैलता है, तू अपने स्वरूप से अन्य नहीं है, निश्चय करके मैं ही तू है ॥७४॥

इदं प्रपञ्चं यत्किंचिद्यद्यज्जगति विद्यते ।

दृश्यरूपं च दृग्रूपं सर्वं शशविषाणवत् ॥७५॥

अर्थ—जो कुछ यह प्रपञ्च है, जो जो जगत में विद्य-मान है, दृश्यरूप दृष्टिरूप है, सब शसे के सींग के समान है ॥७५॥

भूमिरापोऽनलो वायुः खं मनो बुद्धिरेव च ।
अहंकारश्च तेजश्च लोकं भुवनमण्डलम् ॥७६॥

अर्थ—भूमि, जल, अग्नि, वायु, मन और बुद्धि, अहंकार, तेज, लोक, भुवन मण्डल ॥७६॥

नाशो जन्म च सत्यं च पुण्यपापजयादिकम् ।
रागः कामः क्रोधलोभौ ध्यानं ध्येयं गुणं परम् ॥७७

अर्थ—नाश, जन्म, सत्य, पुण्य, पाप, जय आदिक राग, काम, क्रोध, लोभ, ध्यान, श्रेष्ठ ध्येय तथा गुण ॥७७॥

गुरुशिष्योपदेशादिरादिरन्तं शमं शुभम् ।
भूतं भव्यं वर्तमानं लक्ष्यं लक्षणमद्वयम् ॥७८॥

अर्थ—गुरु-शिष्य, उपदेश आदि, आदि-अन्त, सम शुभ, भूत, भविष्यत, वर्तमान, लक्ष्य, लक्षण, अद्वय ॥७८॥

शमो विचारः सन्तोषो भोक्तृभोज्यादिरूपकम् ।
यमाद्यष्टाङ्गयोगं च गमनागमनात्मकम् ॥७९॥

अर्थ—शम, विचार, सन्तोष, भोक्ता, भोग आदि रूप यमादि अष्टांग योग, जाना और आना ॥७९॥

आदिमध्यान्तरङ्गं च ग्राह्यं त्याज्यं हरिः शिवः ।
इन्द्रियाणि मनश्चैव अवस्थात्रितयं तथा ॥८०॥

अर्थ—आदि, मध्य और अन्तरङ्ग ग्राह्य और त्याज्य हरि, शिव, इन्द्रियां और मन तथा तीनों अवस्थाएं ॥८०॥

चतुर्विंशतितत्त्वं च साधनानां चतुष्टयम् ।
सजातीयं विजातीयं लोका भूरादयः क्रमात् ॥८१॥

अर्थ—चौबीस तत्व और चार साधन सजातीय-विजातीय क्रम से भू आदि लोक ॥८१॥

सर्ववर्णाश्रमाचारं मन्त्रतन्त्रादिसंग्रहम् ।
विद्याविद्यादिरूपं च सर्ववेद्यं जडाजडम् ॥८२॥

अर्थ—सर्ववर्णाश्रम का आचार, मन्त्र तन्त्र आदिकों का संग्रह, विद्या-अविद्या, सर्ववेद, जड़-अजड़ ॥८२॥

बन्धमोक्षविभागं च ज्ञानविज्ञानरूपकम् ।
बोधाबोधस्वरूपं वा द्वैताद्वैतादिभाषणम् ॥८३॥

अर्थ—बन्ध-मोक्ष का विभाग, ज्ञान-विज्ञान का स्वरूप अथवा बोध-अबोधका स्वरूप, द्वैत-अद्वैतका कथन ॥८३

सर्ववेदान्तसिद्धान्तं सर्वशास्त्रार्थनिर्णयम् ।
अनेकजीवसद्भावमेकजीवादिनिर्णयम् ॥८४॥

अर्थ—सब वेदान्त का सिद्धान्त, सब शास्त्रार्थों का निर्णय, अनेक जीवों का सद्भाव, तथा एक जीवादि का निर्णय ॥८४॥

यद्यद्ध्यायति चित्तेन यद्यत्संकल्पते क्वचित् ।
बुद्ध्या निश्चीयते यद्यद्गुरुणा संश्रृणोति यत् ॥८५॥

अर्थ—जो जो चित्त से ध्यान किया जाता है, जो जो

संकल्प किया जाता है, जो बुद्धि से निश्चय किया जाता है, जो जो गुरु से सुना जाता है ॥८५॥

यद्यद्वाचा व्याकरोति यद्यदाचार्यभाषणम् ।
यद्यत्स्वरेन्द्रियैर्भाव्यं यद्यन्मीमांस्यते पृथक् ॥८६॥

अर्थ—जो जो वाणी कहती है, जो जो आचार्य का कथन है, जो जो इन्द्रियों से प्रतीत होता है, जो जो पृथक् विचारा जाता है ॥८६॥

यद्यन्न्यायेन निर्णीतं महद्भिर्वेदपारगैः ।
शिवः हरति लोकान्वै विष्णुःपाति जगत्त्रयम् ॥८७॥

अर्थ—जो कुछ महान वेद के पारदर्शियों से न्याय द्वारा निश्चय किया गया है, शिव लोकों का संहार करता है, विष्णु तीन जगत को पालता है ॥८७॥

ब्रह्मा सृजति लोकान्वै एवमादिक्रियादिकम् ।
यद्यदस्ति पुराणेषु यद्यद्वेदेषु निर्णयम् ॥८८॥

अर्थ—ब्रह्मा लोकों को उत्पन्न करता है, इस प्रकार आदि की क्रिया आदिक जो जो पुराणों में है, जो जो वेदों में निर्णय है ॥८८॥

सर्वोपनिषदां भावं सर्वं शशविषाणवत् ।
देहोऽहमिति संकल्पः तदन्तःकरणं स्मृतम् ॥८९॥

अर्थ—सब उपनिषद का भाव सब शशे के सींगों के समान है। मैं देह हूं, इस प्रकार का संकल्प अन्तःकरण का

माना हुआ है ॥८९॥

देहोऽहमिति संकल्पो महत्संसार उच्यते ।
देहोऽहमिति संकल्पस्तद्बन्धमिति चोच्यते ॥९०॥

अर्थ—'मैं देह हूं' इस प्रकार का संकल्प महान संसार कहलाता है । 'मैं देह हूं' यह संकल्प ही बन्ध कहलाता है ॥९०॥

देहोऽहमिति संकल्पस्तद्दुःखमिति चोच्यते ।
देहोऽहमिति यद्भानं तदेव नरकं स्मृतम् ॥९१॥

अर्थ—'मैं देह हूं' इस प्रकार का संकल्प दुःख कहलाता है । 'मैं देह हूं' इस प्रकार का जो भान है उसको नरक समझे ॥९१॥

देहोऽहमिति संकल्पो जगत्सर्वमितीर्यते ।
देहोऽहमिति संकल्पो हृदयग्रन्थिरीरितिः ॥९२॥

अर्थ—'मैं देह हूं' इस प्रकार का संकल्प सब जगत कहलाता है । 'मैं देह हूं' इस प्रकार का संकल्प हृदय ग्रन्थि कहलाता है ।

देहोऽहमिति यज्ज्ञानं तदेवाज्ञानमुच्यते ।
देहोऽहमिति यज्ज्ञानं तदसद्भावमेव च ॥९३॥

अर्थ—'मैं देह हूं' इस प्रकार का ज्ञान अज्ञान कहलाता है । 'मैं देह हूं' इस प्रकार का ज्ञान ही असत्य भावना है ॥९३॥

देहोऽहमिति या बुद्धिः स चाविद्येति भण्यते ।
देहोऽहमिति यज्ज्ञानं तदेव द्वैतमुच्यते ॥६४॥

अर्थ—हे स्वामी कार्तिकेय ! 'मैं देह हूं' इस प्रकार की बुद्धि अविद्या कहलाती है। 'मैं देह हूं' इस प्रकार का ज्ञान ही द्वैत कहलाता है ॥६४॥

देहोऽहमिति संकल्पः सत्यजीवः स एव हि ।
देहोऽहमिति यज्ज्ञानं परिच्छिन्नमितीरितम् ॥६५॥

अर्थ—'मैं देह हूं' इस प्रकार का संकल्प ही सच्चा जीव है। 'मैं देह हूं' इस प्रकार का ज्ञान ही परिच्छिन्न कहा गया है ॥६५॥

देहोऽहमिति संकल्पो महापापमिति स्फुटम् ।
देहोऽहमिति या बुद्धिस्तृष्णा दोषामयः किल ॥६६॥

अर्थ—'मैं देह हूं' इस प्रकार का संकल्प प्रत्यक्ष महापाप है। 'मैं देह हूं' इस प्रकार की बुद्धि ही प्रसिद्ध तृष्णा दोषरूप रोग है ॥६६॥

यत्किंचिदपि संकल्पस्तापत्रयमितीरितम् ।
कामं क्रोधं बन्धनं सर्वदुःखं विश्वं दोषं कालनानास्वरूपम्
यत्किंचेदं सर्वसंकल्पजालं तत्किंचेदं मानसं सोम्य विद्धि६७

अर्थ—जो कुछ भी संकल्प है वह तीनों ताप कहा गया है। काम, क्रोध, बन्धन है, सर्व दुःख है, सब दोषरूप है,

काल करके नाना स्वरूप धारण करते हैं। यह जो कुछ है सब संकल्प का जाल है! हे सोम्य! ऐसे इस किंचित को मन का विचार जान ॥९७॥

मन एव जगत्सर्वं मन एव महारिपुः।
मन एव हि संसारो मन एव जगत्त्रयम् ॥९८॥

अर्थ—मन ही सब जगत है, मन ही महा शत्रु है, मन ही संसार है, मन ही तीनों जगत है ॥९८॥

मन एव महद्दुःखं मन एव जरादिकम्।
मन एव हि कालश्च मन एव मलं तथा ।९९॥

अर्थ—मन ही महा दुःख है, मन ही जरा आदिक है, मन ही काल है और मन ही मल है ॥९९॥

मन एव हि संकल्पो मन एव हि जीवकः।
मन एव हि चित्तं च मनोऽहंकार एव च ॥१००॥

अर्थ—मन ही संकल्प है, मन ही जीव है, मन ही चित्त है, मन ही अहंकार है ॥१००॥

मन एव महद्बन्धं मनोऽन्तःकरणं च तत्।
मन एव हि भूमिश्च मन एव हि तोयकम् ॥१०१

अर्थ—मन ही महा बन्ध है, मन ही अन्तःकरण है, मन ही पृथ्वी है, मन ही जल है ॥१०१॥

मन एव हि तेजश्च मन एव मरुन्महान्।
मन एव हि चाकाशं मन एव हि शब्दकम् ॥१०२॥

अर्थ—मन ही तेज है, मन ही महान वायु है, मन ही आकाश है, मन ही शब्दरूप है ॥१०२॥

स्पर्शं रूपं रसं गन्धं कोषाः पञ्च मनोभवाः।
जाग्रत्स्वप्नसुषुप्त्यादि मनोमयमितीरितम् ॥१०३॥

अर्थ—स्पर्श, रूप, रस, गन्ध, पांचों कोष मन से हुए हैं। जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति आदि मनोमय कहे जाते है ॥१०३॥

दिक्पाला वसवो रुद्रा आदित्याश्च मनोमयाः।
दृश्यं जडं द्वन्द्वजातमज्ञानं मानसं स्मृतम् ॥१०४॥

अर्थ—दिक्पाल, वसु, रुद्र, आदित्य, मनोमय हैं, दृश्य, जड़, द्वन्द्व, जन्म, अज्ञान मन के समझे गये हैं ॥१०४॥

संकल्पमेव यत्किंचित्तत्तन्नास्तीति निश्चिनु।
नास्ति नास्ति जगत्सर्वं गुरुशिष्यादिकं नहीत्युपनिषद् १०५

अर्थ–जो कुछ संकल्प है वह नहीं है, ऐसा निश्चय कर सब जगत नहीं है, नहीं है, गुरु-शिष्यादिक भी नहीं हैं, यह सिद्धान्त है निदाघ ॥१०५॥

इति श्री तेजोबिन्दूपनिषद हिन्दी भाषायां कृतायां ब्रह्मश्रोत्री ब्रह्मनेष्ठी श्री स्वामी देव हरि–शिष्येण–भगवान–हरिणा कृतायां पंचमोऽध्यायः समाप्तः ॥४॥

छठा अध्याय

॥ ऋभु ॥

सर्वं सच्चिन्मयं विद्धि सर्वं सच्चिन्मयं ततम् ।
सच्चिदानन्दमद्वैतं सच्चिदानन्दमद्वयम् ॥१॥

ऋभु उवाच

अर्थ—हे निदाघ ! सर्व सत् चितमय जान, सब सत चितमय व्यापक है, सत चित आनन्द अद्वैत है, सत् चित आनन्द अद्वय है ॥१॥

सच्चिदानन्दमात्रं हि सच्चिदानन्दमन्यकम् ।
सच्चिदानन्दरूपोऽहं सच्चिदानन्दमेव खम् ॥२॥

अर्थ—सत् चित आनन्द अमात्र है, सत्‌चित आनन्द अन्य रूप है, सत्‌चित आनन्द रूप मैं हूं, सत्‌चित आनन्द आकाश है ॥२॥

सच्चिदानन्दमेव त्वं सच्चिदानन्दकोऽस्म्यहम् ।
मनोबुद्धिरहंकारचित्तसंघातका अमी ॥३॥

अर्थ—सत्‌चित आनन्द ही तू है, सत्‌चित आनन्द रूप मैं हूं, यह मन, बुद्धि, अहंकार चित समूह ॥३॥

न त्वं नाहं न चान्यद्वा सर्वं ब्रह्मैव केवलम् ।
न वाक्यं न पदं वेदं नाक्षरं न जडं क्वचित् ॥४॥

अर्थ—हे राजन्! ये न तू है, न मैं हूं, न अन्य कोई है। सब केवल ब्रह्म ही है, न वाक्य, न पद, न वेद, न अक्षर, न जड़ कहीं है ॥४॥

न मध्यं नादि नान्तं वा न सत्यं न निबन्धनम्।
न दुःखं न सुखं भावं न माया प्रकृतिस्तथा ॥५॥

अर्थ—हे राजन्! न मध्य, न आदि, न अन्त, न सत्य, न बन्ध, न दुःख, न सुख, न भाव; न माया, न प्रकृति है ॥५॥

न देहं न मुखं घ्राणं न जिह्वा न च तालुनी।
न दन्तोष्ठौ ललाटं च निःश्वासोच्छ्वास एव च ॥६॥

अर्थ—हे राजन्! न देह है, न मुख है, न घ्राण है, न जिह्वा है, न तालु है, न दांत हैं, न होठ हैं, न मस्तक है, न श्वास है, न उश्वास है ॥६॥

न स्वेदमस्थि मांसं च न रक्तं न च मूत्रकम्।
न दूरं नान्तिकं नाङ्गं नोदरं न किरीटकम् ॥७॥

अर्थ—न पसीना है, न हड्डी है, न मांस है, न रक्त है, न मूत्र है, न दूर है, न पास है, न अङ्ग है, न उदर है, न मुकट है ॥७॥

न हस्तपादचलनं न शास्त्रं न च शासनम्।
न वेत्ता वेदनं वेद्यं न जाग्रत्स्वप्नसुप्तयः ॥८॥

अर्थ—न हाथ-पैर का चलना है, न शास्त्र है, न उपदेश है, न जानने वाला है, न ज्ञान है, न ज्ञेय है, न जाग्रत है, न स्वप्न है, न सुषुप्ति है ॥८॥

तुर्यातीतं न मे किंचित्सर्वं सच्चिन्मयं ततम् ।
नाध्यात्मिकं नाधिभूतं नाधिदैवं न मायकम् ॥९॥

अर्थ—हे निदाघ ! मुझमें तुर्यातीत किंचित नहीं है, सर्व सत्चितमय व्यापक है । न आध्यात्मिक है, न अधिभूत है, न अधिदैव है, न मायिक है ॥९॥

न विश्वस्तैजसः प्राज्ञो विराट्सूत्रात्मकेश्वराः ।
न गमागमचेष्टा च न नष्टं न प्रयोजनम् ॥१०॥

अर्थ—न विश्व तैजस प्राज्ञ विराट सूत्रात्मा ईश्वर है । हे राजन् ! न आगे जाने की चेष्टा है, न नष्ट है, न प्रयोजन है ॥१०॥

त्याज्यं ग्राह्यं न दूष्यं वा ह्यमेध्यामेध्यकं तथा ।
न पीनं न कृशं क्लेदं न कालं देशभाषणम् ॥११॥

अर्थ—त्यागने योग्य, ग्रहण करने योग्य वा दूषित नहीं है, न पवित्र है, न अपवित्र है, न मोटा है, न पतला है, न भीगा हुआ है, न काल है, न देश का कथन है ॥११॥

न सर्वं न भयं द्वैतं न वृक्षतृणपर्वतः ।
न ध्यानं योगसंसिद्धिर्न ब्रह्मक्षत्रवैश्यकम् ॥१२॥

अर्थ—न सर्व है, न भय है, न द्वैत है, न वृक्ष, तृण, पर्वत है, न ध्यान है, न योग है, न संसिद्धि है, न ब्राह्मण है, न क्षत्रिय है, न वैश्य है ॥१२॥

न पक्षी न मृगो नाङ्गी न लोभो मोह एव च ।
न मदो न च मात्सर्यं कामक्रोधादयस्तथा ॥१३॥

अर्थ—न पक्षी है, न मृग है, न अङ्गी है, न लोभ है, न मोह ही है । न मद है, न मत्सरता है, न काम है, न क्रोध आदि है ॥१३॥

न स्त्रीशूद्रविडालादि भक्ष्यं भोज्यादिकं च यत् ।
न प्रौढहीनो नास्तिक्यं न वार्तावसरोऽस्ति हि ॥१४॥

अर्थ—स्त्री, शूद्र, बिल्ली आदि और भक्ष्य, भोज्य आदिक नहीं हैं । न मोटा है, न पतला है, न आस्तिक्य है, न वार्ता ही का अवसर है ॥१४॥

न लौकिको न लोको वा न व्यापारो न मूढता ।
न भोक्ता भोजनं भोज्यं न पात्रं पानपेयकम् ॥१५॥

अर्थ—न लौकिक है, न लोक है, न व्यापार है, न मूढता है, न भोक्ता (जीव) है, न भोजन (अन्न पका हुआ) है, न भोज्य (खाने योग्य) है, न पात्र (भण्डार) है, न पान है, न पीने योग्य है ॥१५॥

न शत्रुमित्रपुत्रादिर्न माता न पिता स्वसा ।
न जन्म न मृतिर्वृद्धिर्न देहोऽहमिति भ्रमः ॥१६॥

अर्थ—न शत्रु, मित्र, पुत्र आदि हैं, न माता, पिता, बहिन आदि हैं। न जन्म है, न मृत्यु है, न वृद्धि है, 'मैं देह हूं' यह भ्रान्ति है ॥१६॥

न शून्यं नापि चाशून्यं नान्तःकरणसंसृतिः।

न रात्रिर्न दिवानक्तं न ब्रह्मा न हरिः शिवः ॥१७॥

अर्थ—न शून्य है, न अशून्य है, न अन्तःकरण है, न संसार है, न रात्रि है, न दिन है, न ब्रह्मा है, न हरि है, न शिव है ॥१७॥

न वारपक्षमासादि वत्सरं न च चञ्चलम्।

न ब्रह्मलोको वैकुण्ठो न कैलासो न चान्यकः ॥१८॥

अर्थ—न वार, पक्ष, मास (महीना) आदिक हैं, न वर्ष है, न स्थूल है, न ब्रह्मलोक है, न वैकुण्ठलोक है, न कैलास है, न अन्य लोक है ॥१८॥

न स्वर्गो न च देवेन्द्रो नाग्निलोको न चाग्निकः।

न यमो यमलोको वा न लोका लोकपालकः ॥१९॥

अर्थ—न स्वर्ग है, न देवराज इन्द्र है, न अग्नि है, न श्लोक है, न अग्निहोत्री है, न यम है, न यमलोक है, न लोक है, न लोकपाल है ॥१९॥

न भूर्भुवः स्वस्त्रैलोक्यं न पातालं न भूतलम्।

नाविद्या न च विद्या च नमाया प्रकृतिर्जडा ॥२०॥

अर्थ—न भूः भुवः और स्वः ये तीनों लोक हैं, न पाताल है, न भूतल है, न अविद्या है, न विद्या है, न माया है, न जड़ प्रकृति है ॥२०॥

न स्थिरं क्षणिकं नाशं न गतिर्न च धावनम् ।
न ध्यातव्यं न मे ध्यानं न मन्त्रो न जपः क्वचित् २१

अर्थ—हे राजन् ! न स्थिर है, न क्षणिक है, न नाश है, न गति है और न दौड़ना है । न मुक्त है, न ध्येय है, न ध्यान है, न मन्त्र है, न कहीं जप है ॥२१॥

न पदार्थो न पूजार्हं नाभिषेको न चार्चनम् ।
न पुष्पं न फलं पत्रं गन्धपुष्पादिधूपकम् ॥२२॥

अर्थ—न पदार्थ है, न पूजने योग्य है, न अभिषेक है, न पूजा है, न पुष्प है, न फल है, न पत्र, गन्ध, पुष्प आदि धूप है ॥२२॥

न स्तोत्रं न नमस्कारं न प्रदक्षिणमण्वपि ।
न प्रार्थना पृथग्भावो न हविर्नाग्निवन्दनम् ॥२३॥

अर्थ—न स्तोत्र है, न नमस्कार है, न थोड़ी सी भी प्रदक्षिणा है, न प्रार्थना है, न पृथक् भाव है, न हवि है, न अग्नि की वन्दना है ॥२३॥

न होमो न च कर्माणि न दुर्वाक्यं सुभाषणम् ।
न गायत्री न वा संधिर्न मनस्यं न दुःस्थितः ॥२४॥

अर्थ—न होम है, न कर्म है, न दुर्वचन है, न सुन्दर भाषण है, न गायत्री है, न संधि है, न ध्यान है, न मन की दुष्ट स्थिति है ॥२४॥

न दुराशा न दुष्टात्मा न चाण्डालो न पौल्कसः ।
न दुःसहं दुरालापं न किरातो न कैतवम् ॥२५॥

अर्थ—न दुराशा है, न दुष्टात्मा है, न चाण्डाल है, न पौलकस (नीच जाति विशेष) है, न दुःसह है, न निन्दा है, न किरात है, न कैतव (भीलों की जाति) है ॥२५॥

न पक्षपातं पक्षं वा न विभूषणतस्करौ ।
न च दम्भो दाम्भिको वा न हीनो नाधिको नरः २६

अर्थ—न पक्षपात है, न पक्ष है, न आभूषण है, न चोर है, न दम्भ है, न दम्भ करने वाला है, न नीच है, न श्रेष्ठ है ॥२६॥

नैकं द्वयं त्रयं तुर्यं न महत्त्वं न चाल्पता ।
न पूर्णं न परिच्छिन्नं न काशी न व्रतं तपः ॥२७॥

अर्थ—एक, दो, तीन, चार, नहीं है, न महानता है, न अल्पपना है, न पूर्ण है, न परिच्छिन्न है, न काशी है, न व्रत है, न तप है ॥२७॥

न गोत्रं न कुलं सूत्रं न विभुत्वं न शून्यता ।
न स्त्री न योषिन्नो वृद्धा न कन्या न वितन्विता ॥२८॥

अर्थ—न गोत्र है, न कुल है, न सूत्र है, न व्यापकता है, न शून्यता है, न स्त्री है, न युवती है, न वृद्धा है, न कन्या है, न सूक्ष्मतन्त्रीपना है ॥२८॥

न सूतकं न जातं वा नान्तर्मुखसुविभ्रमः ।
न महावाक्यमैक्यं वा नाणिमादिविभूतयः ॥२६॥

अर्थ—न सूतक (उत्पत्ति का दोष) है, न जन्म है, न अन्तर्मुख है, न भ्रम है, न महावाक्य है, न एकता है, न अणिमा आदि आठ सिद्धियां हैं ॥२६॥

सर्वचैतन्यमात्रत्वात्सर्वदोषः सदा न हि ।
सर्वं सन्मात्ररूपत्वात्सच्चिदानन्दमात्रकम् ॥३०॥

अर्थ—सर्व चैतन्यमात्र होने से सदा सर्वदोष नहीं है, सर्व सत्यमात्र रूप होने से सच्चिदानन्द मात्र है ॥३०॥

ब्रह्मैव सर्वं नान्योऽस्ति तदहं तदहं तथा ।
तदेवाहं तदेवाहं ब्रह्मैवाहं सनातनम् ॥३१॥

अर्थ—हे राजन ! इस ब्रह्माभ्यास को बारम्बार कर, विचार कर, सब ब्रह्म ही है, अन्य नहीं है, इसी प्रकार वह मैं हूं, वह मैं हूं, वह ही मैं हूं, वह ही मैं हूं, मैं सनातन ब्रह्म ही हूं ॥३१॥

ब्रह्मैवाहं न संसारी ब्रह्मैवाहं न मे मनः ।
ब्रह्मैवाहं न मे बुद्धिर्ब्रह्मैवाहं न चेन्द्रियः ॥३२॥

अर्थ—'मैं ब्रह्म ही हूं' संसारी (जीव) नहीं हूं। 'मैं ब्रह्म ही हूं' मुझ से मन नहीं है। 'मैं ब्रह्म ही हूं' मुझ से बुद्धि नहीं है। 'मैं ब्रह्म ही हूं' इन्द्रियां नहीं हूं ॥३२॥

ब्रह्मैवाहं न देहोऽहं ब्रह्मैवाहं न गोचरः।
ब्रह्मैवाहं न जीवोऽहं ब्रह्मैवाहं न भेदभूः ॥३३॥

अर्थ—'मैं ब्रह्म ही हूं' देह नहीं हूं। 'मैं ब्रह्म ही हूं' विषय नहीं हूं। 'मैं ब्रह्म ही हूं' जीव (कर्ता भोक्ता) नहीं हूं। 'मैं ब्रह्म ही हूं' भेद वाला नहीं हूं ॥३३॥

ब्रह्मैवाहं जडो नाहमहं ब्रह्म न मे मृतिः।
ब्रह्मैवाहं न च प्राणो ब्रह्मैवाहं परात्परः ॥३४॥

अर्थ—'मैं ब्रह्म ही हूं' जड़ नहीं हूं। 'मैं ब्रह्म ही हूं' मुझ में मरण नहीं है। 'मैं ब्रह्म ही हूं' प्राण नहीं हूं। 'मैं पर से पर ब्रह्म ही हूं ॥३४॥

इदं ब्रह्म परं ब्रह्म सत्यं ब्रह्म प्रभुर्हि सः।
कालो ब्रह्म कला ब्रह्म सुखं ब्रह्म स्वयंप्रभम् ॥३५॥

अर्थ—यह ब्रह्म है, परब्रह्म है, सत्य ब्रह्म है, वह प्रभु है, काल ब्रह्म है, कला ब्रह्म है, सुख ब्रह्म है, स्वयं प्रकाश है ॥३५

एकं ब्रह्म द्वयं ब्रह्म मोहो ब्रह्म शमादिकम्।
दोषो ब्रह्म गुणो ब्रह्म दमः शान्तं विभुः प्रभुः ॥३६॥

अर्थ—एक ब्रह्म है, द्वय ब्रह्म है, मोह ब्रह्म है, शमादिक

ब्रह्म है, दोष ब्रह्म है, गुण ब्रह्म है, दम ब्रह्म है, शान्ति विभु प्रभु ब्रह्म है ॥३६॥

लोको ब्रह्म गुरुर्ब्रह्म शिष्यो ब्रह्म सदाशिवः ।
पूर्वं ब्रह्म परं ब्रह्म शुद्धं ब्रह्म शुभाशुभम् ॥३७॥

अर्थ—लोक ब्रह्म है, गुण ब्रह्म है, शिष्य ब्रह्म है, सदाशिव ब्रह्म है, पूर्व ब्रह्म है, पर ब्रह्म है, शुद्ध ब्रह्म है, शुभाशुभ ब्रह्म है ॥३७॥

जीव एव सदा ब्रह्म सच्चिदानन्दमस्म्यहम् ।
सर्वं ब्रह्ममयं प्रोक्तं सर्वं ब्रह्ममयं जगत् ॥३८॥

अर्थ—जीव ही सदा ब्रह्म है, मैं सच्चिदानन्द हूं, सर्व ब्रह्ममय कहा है, सर्व जगत ब्रह्ममय है ॥३८॥

स्वयं ब्रह्म न सन्देहः स्वस्मादन्यन्न किंचन ।
सर्वमात्मैव शुद्धात्मा सर्वं चिन्मात्रमद्वयम् ॥३६॥

अर्थ—सन्देह रहित आप ही ब्रह्म है, अपने से अन्य कुछ नहीं है, सब आत्मा ही है, शुद्ध आत्मा है, सब चिन्मात्र आदि अद्वितीय है ॥३६॥

नित्यनिर्मलरूपात्मा ह्यात्मनोऽन्यन्न किंचन ।
अणुमात्रलसद्रूपमणुमात्रमिदं जगत् ॥४०॥

अर्थ-आत्मा नित्य निर्मलरूप है, आत्मा से अन्य कुछ नहीं है, अणुमात्र शुद्धरूप है, अणुमात्र यह जगत है ॥४०॥

अणुमात्रं शरीरं वा ह्यणुमात्रमसत्यकम् ।
अणुमात्रमचिन्त्यं वा चिन्त्यं वा ह्यणुमात्रकम् ॥४१॥

अर्थ—हे राजन्! पुनः अभ्यास कर जिससे मनो-नास हो। अणुमात्र शरीर है, अणुमात्र सत्य है, अणुमात्र अचिन्त्य है अथवा अणुमात्र चिन्त्य है ॥४१॥

ब्रह्मैव सर्वं चिन्मात्रं ब्रह्ममात्रं जगत्त्रयम् ।
आनन्दं परमानन्दमन्यत्किञ्चन्न किंचन ॥४२॥

अर्थ—ब्रह्म ही सब चिन्मात्र है, ब्रह्ममात्र तीनों जगत हैं, आनन्द परमानन्द है, अन्य कुछ नहीं है ॥४२॥

चैतन्यमात्रमोंकारं ब्रह्मैव सकलं स्वयम् ।
अहमेव जगत्सर्वमहमेव परं पदम् ।४३॥

अर्थ—चैतन्यमात्र ओंकार है, ब्रह्म ही सर्व आप है, मैं ही सब जगत हूं, मैं ही परम पद हूं ॥४३॥

अहमेव गुणातीत अहमेव परात्परः ।
अहमेव परं ब्रह्म अहमेव गुरोर्गुरुः ॥४४॥

अर्थ—मैं ही गुणातीत हूं, मैं ही पर से पर हूं, मैं ही पर ब्रह्म हूं, मैं ही गुरुओं का गुरु हूं ॥४४॥

अहमेवाखिलाधार अहमेव सुखात्सुखम् ।
आत्मनोऽन्यज्जगन्नास्ति आत्मनोऽन्यत्सुखं न च ४५

अर्थ—मैं ही सब का आधार हूं, मैं ही सुख का सुख

हूं, आत्मा से भिन्न जगत नहीं है, आत्मा से भिन्न सुख भी नहीं है ॥४५॥

आत्मनोऽन्या गतिर्नास्ति सर्वमात्ममयं जगत् ।

आत्मनोऽन्यन्न हि क्वापि आत्मनोऽन्यत्तृणं न हि ४६

अर्थ—आत्मा से भिन्न कोई गति नहीं है, सब जगत् आत्ममय है, आत्मा से भिन्न कहीं नहीं है, आत्मा से भिन्न तृण भी नहीं है ॥४६॥

आत्मनोऽन्यत्तुषं नास्ति सर्वमात्ममयं जगत् ।

ब्रह्ममात्रमिदं सर्वं ब्रह्ममात्रमसन्न हि ॥४७॥

अर्थ—आत्मा से भिन्न तुष (भूसा) भी नहीं है, सब जगत् आत्ममय है, ब्रह्ममात्र यह सब है, ब्रह्ममात्र असत नहीं है ॥४७॥

ब्रह्ममात्रं श्रुतं सर्वं स्वयं ब्रह्मैव केवलम् ।

ब्रह्ममात्रं वृत्तं सर्वं ब्रह्ममात्रं रसं सुखम् ॥४८॥

अर्थ—सब सुना हुआ ब्रह्ममात्र है, ब्रह्म ही केवल आप है, ब्रह्ममात्र सब वृत्त है, ब्रह्ममात्र रस और सुख है ॥४८॥

ब्रह्ममात्रं चिदाकाशं सच्चिदानन्दमव्ययम् ।

ब्रह्मणोऽन्यतरन्नास्ति ब्रह्मणोऽन्यज्जगन्न च ॥४६॥

अर्थ—ब्रह्ममात्र चिदाकाश, सच्चिदानन्द, अद्वितीय है । ब्रह्म के सिवाय अन्य नहीं है, ब्रह्म से भिन्न जगत नहीं है ॥४६॥

ब्रह्मणोऽन्यदहं नास्ति ब्रह्मणोऽन्यत्फलं न हि ।
ब्रह्मणोऽन्यत्तृणं नास्ति ब्रह्मणोऽन्यत्पदं न हि ॥५०॥

अर्थ—मैं ब्रह्मसे भिन्न नहीं हूं, ब्रह्म के सिवाय फल नहीं है, ब्रह्म से भिन्न तृण नहीं है, ब्रह्म से भिन्न पद नहीं है ॥५०॥

ब्रह्मणोऽन्यद्गुरुर्नास्ति ब्रह्मणोऽन्यमसद्वपुः ।
ब्रह्मणोऽन्यन्न चाहंता त्वत्तेदन्ते नहि क्वचित् ॥५१॥

अर्थ—हे निदाघ ! ब्रह्म से भिन्न गुरु नहीं है, ब्रह्म विना शरीर असत्य है, ब्रह्म से अन्य अहंता, तुम्हपना, यह, वह कहीं नहीं है ॥५१॥

स्वयं ब्रह्मात्मकं विद्धि स्वस्मादन्यन्न किंचन ।
यत्किंचिद्दृश्यते लोके यत्किंचिद्भाष्यते जनैः ॥५२॥

अर्थ—हे राजन् ! अपने को ब्रह्म-स्वरूप जान, अपने से अन्य कुछ नहीं है, जो कुछ जगत् में देखा जाता है, जो कुछ लोगों से कहा जाता है ॥५२॥

यत्किंचिद्भुज्यते क्वापि तत्सर्वमसदेव हि ।
कर्तृभेदं क्रियाभेदं गुणभेदं रसादिकम् ॥५३॥

अर्थ—जो कुछ कहीं भी भोगा जाता है वह सब असत्य है। कर्ता-भेद, क्रिया-भेद, गुण-भेद रसादिक ॥५३॥

लिङ्गभेदमिदं सर्वमसदेव सदा सुखम् ।
कालभेदं देशभेदं वस्तुभेदं जयाजयम् ॥५४॥

अर्थ— यह सब लिङ्ग–भेद असत्य ही हैं, सदा सुख, काल–भेद, देश–भेद, वस्तु–भेद, जीत–हार ॥५४॥

यद्यद्भेदं च तत्सर्वमसदेव हि केवलम् ।
असदन्तःकरणकमसदेवेन्द्रियादिकम् ॥५५॥

अर्थ—जो जो भेद हैं वे केवल असत्य ही हैं, अन्तः–करण असत्य है, इन्द्रियादिक असत्य हैं ॥५५॥

असत्प्राणादिकं सर्वं संघातमसदात्मकम् ।
असत्यं पञ्चकोशाख्यमसत्यं पञ्च देवता ॥५६॥

अर्थ— प्राणादिक सब असत्य हैं, शरीर सब असत्य है, पांच कोश असत्य हैं, देवता असत्य हैं ॥५६॥

असत्यं षड्विकारादि असत्यमरिवर्गकम् ।
असत्यं षड़ृतुश्चैव असत्यं षड्रसस्तथा ॥५७॥

अर्थ—छह विकारादि असत्य हैं, शत्रु वर्ग असत्य है, छह ऋतुएं असत्य हैं और छह रस असत्य हैं ॥५७॥

सच्चिदानन्दमात्रोऽहमनुत्पन्नमिदं जगत् ।
आत्मैवाहं परं सत्यं मान्याः संसारदृष्टयः ॥५८॥

अर्थ—मैं सच्चिदानन्द मात्र हूं, यह जगत् कभी उत्पन्न नहीं हुआ है, मैं परम सत्य आत्मा ही हूं, अन्य संसार दृष्टि नहीं है ॥५८॥

सत्यमानन्दरूपोऽहं चिद्घनानन्दविग्रहः ।
अहमेव परानन्द अहमेव परात्परः ॥५९॥

अर्थ—मैं सत्य आनन्द रूप हूं, चैतन्यघन आनन्द स्वरूप हूं, मैं ही परमानन्द हूं, मैं ही पर से पर हूं ॥५६॥

ज्ञानाकारमिदं सर्वं ज्ञानानन्दोऽहमद्वयः ।
सर्वप्रकाशरूपोऽहं सर्वाभावस्वरूपकम् ॥६०॥

अर्थ—यह ज्ञानाकार है, मैं अद्वितीय ज्ञान आनन्द रूप हूं, मैं सबका प्रकाशरूप हूं, मैं सर्व अभावरूप हूं ॥६०॥

अहमेव सदा भामीत्येवं रूपं कुतोऽप्यसत् ।
त्वमित्येवं परं ब्रह्म चिन्मयानन्दरूपवान् ।६१॥

अर्थ—मैं ही सदा भासता हूं, कहां असत्य है, तू ही चिन्मात्र आनन्दरूप वाला परब्रह्म है ॥६१॥

चिदाकारं चिदाकाशं चिदेव परम सुखम् ।
आत्मैवाहमसन्नाहं कूटस्थोऽहं गुरुः परः ॥६२॥

अर्थात्—चैतन्य आकार है, चैतन्य आकाश है, चैतन्य ही परम सुख है, मैं आत्मा ही हूं, असत् नहीं हूं, मैं कूटस्थ हूं, श्रेष्ठ गुरु हूं ॥६२॥

सच्चिदानन्दमात्रोऽहमनुत्पन्नमिदं जगत् ।
कालो नास्ति जगन्नास्ति मायाप्रकृतिरेव न ॥६३॥

अर्थ—मैं सच्चिदानन्द मात्र हूं, यह जगत् उत्पन्न ही नहीं हुआ है, काल नहीं है, जगत् नहीं है, माया प्रकृति भी नहीं है ॥६३॥

अहमेव हरिः साक्षादहमेव सदाशिवः ।
शुद्धचैतन्यभावोऽहं शुद्धसत्त्वानुभावनः ॥६४॥

अर्थ—मैं ही साक्षात् हरि हूं, मैं ही सदा शिव हूं, मैं ही शुद्ध सत्व को प्रकाश करने वाला हूं, मैं शुद्ध, चैतन्य भाव-रूप हूं ॥६४॥

अद्वयानन्दमात्रोऽहं चिद्घनैकरसोऽस्म्यहम् ।
सर्वं ब्रह्मैव सततं सर्वं ब्रह्मैव केवलम् ॥६५॥

अर्थ—मैं अद्वितीय आनन्द मात्र हूं, मैं चैतन्यघन एक रस हूं, सब सदा ब्रह्म ही है, सब केवल ब्रह्म ही है, ॥६५॥

सर्वं ब्रह्मैव सततं सर्वं ब्रह्मैव चेतनम् ।
सर्वान्तर्यामिरूपोऽहं सर्वसाक्षित्वलक्षणः ॥६६॥

अर्थ—सब सदा ब्रह्म ही है, सब चैतन्य ब्रह्म ही है, मैं सबका अन्तर्यामी रूप हूं, सर्व साक्षीपने के लक्षण वाला मैं हूं ॥६६॥

परमात्मा परं ज्योतिः परं धाम परा गतिः ।
सर्ववेदान्तसारोऽहं सर्वशास्त्रसुनिश्चितः ॥६७॥

अर्थ—परमात्मा परम ज्योति, परम धाम, परम गति, सब वेदान्त का सार हूं, सब शास्त्रों से निश्चित किया गया है ६७

योगानन्दस्वरूपोऽहं मुख्यानन्दमहोदयः ।
सर्वज्ञानप्रकाशोऽस्मि मुख्यविज्ञानविग्रहः ॥६८॥

अर्थ—मैं योगानन्द स्वरूप हूं, मैं मुख्य आनन्द महोदय हूं, मैं सब ज्ञान का प्रकाश हूं, मैं मुख्य विज्ञान-स्वरूप हूं ॥६८॥

तुर्यातुर्यप्रकाशोऽस्मि तुर्यातुर्यादिवर्जितः ।
चिदक्षरोऽहं सत्योऽहं वासुदेवोऽजरोऽमरः ॥६९॥

अर्थ—मैं तुर्य-अतुर्य का प्रकाश हूं, मैं तुर्य-अतुर्य आदि से रहित हूं, मैं चैतन्य अक्षर हूं, मैं सत्य हूं, मैं वासुदेव अजर-अमर हूं ॥६९॥

अहं ब्रह्म चिदाकाशं नित्यं ब्रह्म निरञ्जनम् ।
शुद्धं बुद्धं सदामुक्तमनामकमरूपकम् ॥७०॥

अर्थ—मैं ब्रह्म चिदाकाश हूं, नित्य ब्रह्म निरञ्जन हूं, मैं शुद्ध, बुद्ध, सदा मुक्त, अनात्म या अरूप हूं ॥७०॥

सच्चिदानन्दरूपोऽहमनुत्पन्नमिदं जगत् ।
सत्यासत्यं जगन्नास्ति संकल्पकलनादिकम् ॥७१॥

अर्थ—हे राजन्! मैं सच्चिदानन्द स्वरूप हूं, यह जगत् उत्पन्न नहीं हुआ है, सत्य-असत्य जगत् नहीं है, संकल्प कल्पना आदिक नहीं है ॥७१॥

नित्यानन्दमयं ब्रह्म केवलं सर्वदा स्वयम् ।
अनन्तमव्ययं शान्तमेकरूपमनामयम् ॥७२॥

अर्थ—नित्य आनन्दमय केवल हमेशा आप है, अनन्त अविकारी शान्त एक रूप और अनामय है ॥७२॥

मत्तोऽन्यदस्ति चेन्मिथ्या यथा मरुमरीचिका ।
वन्ध्याकुमारवचने भीतिश्चेदस्ति किंचन ॥७३॥

अर्थ—हे निदाघ ! यदि मुझ से कुछ अन्य है तो वह मृग जल के समान मिथ्या है, यदि बन्ध्या पुत्र के वचन में भय है तो कुछ है ॥७३॥

शशशृङ्गेण नागेन्द्रो मृतिश्चेज्जगदस्ति तत् ।
मृगतृष्णाजलं पीत्वा तृप्तश्चेदस्त्विदं जगत् ॥७४॥

अर्थ—शशे के सींगों से मर जाय तो जगत् है, मृग-तृष्णा जल से तृप्त हो जाय तो यह जगत् है ॥७४॥

नरशृङ्गेण नष्टश्चेत्कश्चिदस्त्विदमेव हि ।
गन्धर्वनगरे सत्ये जगद्भवति सर्वदा ॥७५॥

अर्थ—मनुष्य के सींगों से नष्ट हो जाय तो यह भी है, गन्धर्व नगर के सत्य होने से जगत् हमेशा है ॥७५॥

गगने नीलिमासत्ये जगत्सत्यं भविष्यति ।
शुक्तिकारजतं सत्यं भूषणं चेज्जगद्भवेत् ॥७६॥

अर्थ—आकाश में नीलता सत्य है तो यह जगत सत्य होगा। सीपी में रूपा सत्य हो तो यह जगत भूषण होगा ॥७६॥

रज्जुसर्पेण दष्टश्चेन्नरो भवतु संसृतिः ।
जातरूपेण बाणेन ज्वालाग्नौ नाशिते जगत् ॥७७॥

अर्थ—रस्सी के सर्प से मनुष्य मर जाय तो संसार हो। सोने के बाण से ज्वाला अग्नि नाश हो जाय तो जगत् है ॥७७॥

विन्ध्याटव्यां पायसान्नमस्ति चेज्जगदुद्भवः।
रम्भास्तम्भेन काष्ठेन पाकसिद्धौ जगद्भवेत् ॥७८॥

अर्थ—विन्ध्याचल के बनमें खीर (दूध) हो जाय तो जगत् उत्पन्न हुआ है। केले के स्तम्भ के काठ से रसोई बन जाय तो जगत सत्य है ॥७८॥

सद्यःकुमारिकारूपैः पाके सिद्धे जगद्भवेत्।
चित्रस्थदीपैस्तमसो नाशश्चेदस्त्विदं जगत् ॥७९॥

अर्थ—गवारपाठे के रूप से (कुवारबूटी) पाक सिद्ध हो जाय तो जगत हो। चित्र के दीपक से अन्धकार चला जाय तो यह जगत् सत्य है ॥७९॥

मासात्पूर्वं मृतो मर्त्यो ह्यागतश्चेज्जगद्भवेत्।
तक्रं क्षीरस्वरूपं चेत्क्वचिन्नित्यं जगद्भवेत् ॥८०॥

अर्थ—मास (महीने) से पहिले मरा हुआ मनुष्य आय जाय तो जगत है। यदि मठे का (छाछ का) दूध हो जाय तो नित्य जगत् है ॥८०॥

गोस्तनादुद्भवं क्षीरं पुनरारोपणे जगत्।
भूरजोऽब्धौ समुत्पन्ने जगद्भवतु सर्वदा ॥८१॥

अर्थ—हे राजन्! गौ के थन से निकाला हुआ दूध फिर भर दिया जाय तो जगत् सत्य है। मिट्टी के रेत में समुद्र उत्पन्न हो जाय तो जगत् हमेशा वस्तु है ॥८१॥

कूर्मरोमभृता गजे बद्धे जगदस्तु मदोत्कटे।
नालस्थतन्तुना मेरुश्चालितश्चेज्जगद्भवेत् ॥८२॥

अर्थ—कछुए के रोम से मस्त हाथी बांध दिया जाय तो जगत् भी सत्य है। कमल डण्डी की तन्तु से मेरु चलने लगे तो जगत् है ॥८२॥

तरङ्गमालया सिन्धुर्बद्धश्चेदस्त्विदं जगत्।
अग्नेरधश्चेज्ज्वलनं जगद्भवतु सर्वदा ॥८३॥

अर्थ—तरङ्गों की माला से समुद्र बांध दिया जाय तो जगत् है। अग्नि की ज्वाला नीचे को जाय तो जगत् सर्वदा है ॥८३॥

ज्वालावह्निः शीतलश्चेदस्तिरूपमिदं जगत्।
ज्वालाग्निमण्डले पद्मवृद्धिश्चेज्जगदस्त्विदम् ॥८४॥

अर्थ—अग्नि की ज्वाला ठण्डी हो तो जगत भी हो, जलती हुई अग्नि के मण्डल में कमलों की वृद्धि हो तो यह जगत् है ॥८४॥

महच्छैलेन्द्रनीलं वा संभवेच्चेदिदं जगत्।
मेरुरागत्य पद्माचे स्थितश्चेदस्त्विदं जगत् ॥८५॥

अर्थ—महान हिमाचल में नील हो तो जगत् हो, मेरु आकर नेत्र की पुतली में स्थित हो तो यह जगत् भी सत्य है ॥८५॥

निगिरेच्चेद्भृङ्गस्तनुर्मेरुं चलवदस्त्विदम् ।
मशकेन हते सिंहे जगत्सत्यं तदास्तु ते ॥८६॥

अर्थ—भृङ्ग का शब्द वाणी रहित हो, मेरु चलायमान हो, मच्छर सिंह को मार डाले तो यह जगत् सत्य हो ॥८६॥

अणुकोटरविस्तीर्णे त्रैलोक्यं चेज्जगद्भवेत् ।
तृणानलश्च नित्यश्चेत्क्षणिकं तज्जगद्भवेत् ॥८७॥

अर्थ—अणु रूप कोटि के विस्तार होने से तीन लोक हों तो यह जगत् है। चणे के भूसा की अग्नि नित्य हो तो जगत् हो ॥८७॥

स्वप्नदृष्टं च यद्वस्तु जागरे चेज्जगद्भवः ।
नदीवेगो निश्चलश्चेत्केनापीदं भवेज्जगत् ॥८८॥

अर्थ—स्वप्न की देखी कोई वस्तु जाग्रत में रहे तो जगत् हो। नदी का वेग किसी प्रकार निश्चल हो जाय तो जगत् हो ॥८८॥

क्षुधितस्याग्निर्भोज्यश्चेन्निमिषं कल्पितं भवेत् ।
जात्यन्धे रत्नविषयः सुज्ञानश्चेज्जगत्सदा ॥८९॥

अर्थ—भूखे का भोजन अग्नि हो तो जगत की कुछ

कल्पना हो। जन्म का अन्धा रत्न परीक्षक हो तो यह जगत् सर्वदा हो ।।८९।।

नपुंसककुमारस्य स्त्रीसुखं चेद्भवेज्जगत् ।
निर्मितः शशशृङ्गेण रथश्चेज्जगदस्ति तत् ।।९०।।

अर्थ—नपुंसक के पुत्र को स्त्री का सुख हो तो जगत् हो। शशे के सींगों से रथ बन जाय तो जगत् हो ।।९०।।

सद्योजाता तु या कन्या भोगयोग्या भवेज्जगत् ।
वन्ध्या गर्भासुतत्सौख्यं ज्ञाता चेदस्त्विदं जगत् ।।९१।।

अर्थ—तत्काल की जन्मी कन्या भोग के योग्य हो तो जगत् है। वन्ध्या गर्भ के दुःख व सुख जानने वाली हो तो जगत् सत्य हो ।।९१।।

काको वा हंसवद्गच्छेज्जगद्भवतु निश्चलम् ।
महाखरो वा सिंहेन युध्यते चेज्जगत्स्थितिः ।।९२।।

अर्थ—काक हंस के समान चले तो जगत् निश्चल हो गधा सिंह के साथ युद्ध करे तो जगत् की स्थिति हो ।।९२।।

महाखरो गजगतिं गतश्चेज्जगदस्तु तत् ।
संपूर्णचन्द्रसूर्यश्चेज्जगद् भातु स्वयं जडम् ।।९३।।

अर्थ—गधा हाथी की चाल चले तो जगत् हो। चन्द्र सूर्य से प्रकाश किया हुआ सम्पूर्ण जगत जड़ है ।।९३।।

चन्द्रसूर्यादिकौ त्यक्त्वा राहुश्चेद्दृश्यते जगत् ।
भृष्टबीजसमुत्पन्नवृद्धिश्चेज्जगदस्तु सत् ९४।।

अर्थ—चन्द्र सूर्यादि को छोड़ कर राहु दीखता हो। भूना बीज उत्पन्न होकर बढ़े तो जगत् सत्य हो ॥६४॥

दरिद्रो धनिकानां च सुखं भुङ्क्ते तदा जगत्।
शुना वीर्येण सिंहस्तु जितो यदि जगत्तदा ॥६५॥

अर्थ—दरिद्री धनवानों का सुख भोगे तो जगत् हो। कुत्ते के वीर्य से शेर उत्पन्न हो तो जगत् हो ॥६५॥

ज्ञानिनो हृदयं मूढैर्ज्ञातं चेत्कल्पनं तदा।
श्वानेन सागरे पीते निःशेषेण मनो भवेत् ॥६६॥

अर्थ—मूढ़ पुरुष ज्ञानी के हृदय को जान ले तो कल्पना हो कुत्ता सारे समुद्र को पान कर ले तो मन-जगत् हो ॥६६॥

शुद्धाकाशो मनुष्येषु पतितश्चेत्तदा जगत्।
भूमौ वा पतितं व्योम व्योमपुष्पं सुगन्धकम् ॥६७॥

अर्थ—शुद्ध आकाश मनुष्यों पर गिर पड़े तो जगत हो। अथवा भूमि पर आकाश गिरे या आकाश के पुष्पों में सुगन्धि हो तो जगत् सत्य हो ॥६७॥

शुद्धाकाशे वने जाते चलिते तु तदा जगत्।
केवले दर्पणे नास्ति प्रतिबिम्बं तदा जगत् ॥६८॥

अर्थ—शुद्ध आकाश में बन उत्पन्न हो और चले तो जगत् है। शुद्ध दर्पण में प्रतिबिम्ब नहीं पड़े तो जगत हो॥६८॥

अजकुक्षौ जगन्नास्ति ह्यात्मकुक्षौ जगन्न हि ।
सर्वथा भेदकलनं द्वैताद्वैतं न विद्यते ॥६६॥

अर्थ—अज की कुक्षि में जगत् नहीं है। आत्मा की कुक्षि में जगत् नहीं है। भेद कलना द्वैत-अद्वैत किसी प्रकार से विद्यमान नहीं है ॥६६॥

मायाकार्यमिदं भेदमस्ति चेद्ब्रह्मभावनम् ।
देहोऽहमिति दुःखं चेद्ब्रह्माहमिति निश्चयः ॥१००॥

अर्थ—यदि यह माया कार्य है, ऐसा भेद है तो वह ब्रह्म की भावना है। 'मैं देह हूँ' यह दुःख है तो 'मैं ब्रह्म हूँ' यह निश्चय है ॥१००॥

हृदयग्रन्थिरस्तित्वे छिद्यते ब्रह्मचक्रकम् ।
संशये समनुप्राप्ते ब्रह्मनिश्चयमाश्रयेत् ॥१०१॥

अर्थ—हे राजन्! हृदय-ग्रन्थि के होने से ब्रह्मचक्र छेदा जाता है। संशय प्राप्त होने पर ब्रह्म के निश्चय का आश्रय करे ॥१०१॥

अनात्मरूपचोरश्चेदात्मरत्नस्य रक्षणम् ।
नित्यानन्दमयं ब्रह्म केवलं सर्वदा स्वयम् ॥१०२॥

अर्थ—अनात्मरूप चोर है तो आत्मरूप रत्न को चोर से रक्षण करे है। ब्रह्म नित्य आनन्दमय केवल सर्वदा आप है ॥१०२॥

एवमादिसुदृष्टान्तैः साधितं ब्रह्ममात्रकम् ।
ब्रह्मैव सर्वभवनं भुवनं नाम सत्यज ॥१०३॥

अर्थ—इस प्रकार के दृष्टांतों से ब्रह्ममात्र साधा जाता है। ब्रह्म सब भवन है. भुवनों का नाम छोड़ दो ॥१०३॥

अहं ब्रह्मेति निश्चित्य अहंभावं परित्यज ।
सर्वमेव लयं याति सुप्तहस्तस्थपुष्पवत् ॥१०४॥

अर्थ - 'मैं ब्रह्म हूँ' इस प्रकार निश्चय करके 'मैं भाव' को त्याग दे। सोये हुये के हाथ में रहे हुए पुष्प के समान सब ही लय हो जाता है ॥१०४॥

न देहो न च कर्माणि सर्वं ब्रह्मैव केवलम् ।
न भूतं न च कार्यं च न चावस्थाचतुष्टयम् ॥१०५॥

अर्थ—न देह है, न कर्म है, सब केवल ब्रह्म ही है। न भूत है, न कार्य है, न चार अवस्थाएं हैं ॥१०५॥

लक्षणत्रयविज्ञानं सर्वं ब्रह्मैव केवलम् ।
सर्वव्यापारमुत्सृज्य ह्यहं ब्रह्मेति भावय ॥१०६॥

अर्थ—तीन लक्षणों का विज्ञान सब केवल ब्रह्म ही है। सब व्यापार छोड़कर 'मैं ब्रह्म हूँ' इस प्रकार भावना कर ॥१०६॥

अहं ब्रह्म न सन्देहो ह्यहं ब्रह्म चिदात्मकम् ।
सच्चिदानन्दमात्रोऽहमिति निश्चित्य तत्त्यज ॥१०७॥

अर्थ—सन्देह रहित मैं ब्रह्म हूं, मैं चैतन्य स्वरूप ब्रह्म हूं। मैं सच्चिदानन्द मात्र हूं, ऐसा निश्चय करके उसको भी छोड़ दो ॥१०७॥

शांकरीयं महाशास्त्रं न देयं यस्य कस्यचित् ।
नास्तिकाय कृतघ्नाय दुर्वृत्ताय दुरात्मने ॥१०८॥

अर्थ—हे निदाघ ! यह शंकर का किया हुआ महा शास्त्र नास्तिक, कृतघ्न, दुराचारी, दुष्टात्मा हर किसी को न देना चाहिये ॥१०८॥

गुरुभक्तिविशुद्धान्तःकरणाय महात्मने ।
सम्यक् परीक्ष्य दातव्यं मासं षण्मासवत्सरम् ॥१०९

अर्थ—गुरुभक्ति से शुद्ध किये हुए अन्तःकरण वाले महात्मा को अच्छी तरह से मास, छह मास, एक वर्ष परीक्षा करके देना चाहिये ॥१०९॥

सर्वोपनिषदभ्यासं दूरतस्त्यज सादरम् ।
तेजोबिन्दूपनिषदमभ्यसेत्सर्वदा मुदा ॥११०॥

अर्थ—सब उपनिषदों के अभ्यास को दूर से त्यागकर आदर सहित तेजोबिन्दु उपनिषद का सर्वदा प्रसन्न होकर अभ्यास करे ॥११०॥

सकृदभ्यासमात्रेण ब्रह्मैव भवति स्वयं,
ब्रह्मैव भवति स्वयमित्युपनिषत् ॥

अर्थ—हे निदाघ ! एक वार अभ्यास मात्र से आप ब्रह्म ही होता है। यह उपनिषत् है ॥

इति श्री तेजोविन्दूपनिषद हिन्दी भाषायां कृतायां ब्रह्मश्रोत्री ब्रह्मनेष्ठी श्री स्वामी देव हरि-शिष्येण-भगवान-हरिणा कृतायां षष्ठोऽध्यायः समापितः ॥६॥

॥ समाप्त ॥

अथ गरुडोपनिषद्

ॐ ब्रह्मविद्यां प्रवक्ष्यामि । यां ब्रह्मा विद्यां नारदाय प्रोवाच नारदो बृहत्सेनाय बृहत्सेन इन्द्राय इन्द्रो भरद्वाजाय भरद्वाजो जीवत्कामेभ्यः शिष्येभ्यः प्रायच्छत् ॥ ॐ तत्कारी मत्कारी विषहारिणी विषनाशिनी विषदूषिणी विषशोषिणी हतं विषं नष्टं विषं प्रनष्टं विषं हतं ते ब्रह्मणा विषमिन्द्रस्य बज्रेण स्वाहा ॥ नागानां सर्पाणां वृश्चिकानां लूतानां प्रलूतानां गोधानां गृहगोधानां मूषिकानां स्थावराणां जंगमानां यद्यनंतक दूतस्त्वम् । यदिवा अनतका स्वयम् । यदि वासुकीदूतस्त्वम् । यदिवा वासुकिः स्वयम् । यदि तक्षकदूतस्त्वम् । यदि वा तक्षकः स्वयम् । यदि वा करिकोटिकादूतस्त्वम । यदि वा करिकोटिका स्वयम् । यदि शंख पुलिकदूतस्त्वम् । यदि वा शंखपुलिकः स्वयम् । यदि वा पद्मकदूतस्त्वम् । यदि वा पद्मकः स्वयम् । यदि महा-पद्मकदूतस्त्वम । यदि वा महापद्मकः स्वयम् । यदि वैला-

पत्रिकदूतस्त्वम् । यदि वा त्रैलापत्रकः स्वयम् । यदि महैला-पत्रिक दूतस्त्वम् । यदि वा महैलापत्रकः स्वयम् ॥१॥ यदि कंवलाश्वतुरदूतस्त्वम् । यदि वा कंवलाश्वतुरा स्वयम् । यदि कातिकदूतस्त्वम् । यदि वा कातिका स्वयम् । यदि कुलिक-दूतस्त्वम् । यदि वा कुलिकः स्वयम् । य इमां महाविद्या ममावस्यायां श्रृणुयात् द्वादशवर्षं न तं दशन्ति सर्पा या इमां महाविद्याममावस्यायामधिप्याना धारयेत यावज्जीवनम् ॥ न तं दर्शन्ति सर्पा । अष्टौ ब्राह्मणान् ग्राहयित्वा मोक्षयति भस्मना मोक्षयति । शतं ब्राह्मणान् ग्राहयित्वा चक्षुयामोक्षयति । सहस्त ब्राह्मणान् वा ग्राहयित्वा मनसा मोक्षयति । इत्याह भगवान् ब्रह्माह भगवान् ब्रह्मेत्यर्थवणवेदे गारुड़ोपनिषद् समाप्तः ॥ श्रीकृष्णार्पणमस्तु ॥१॥

माहात्म्य—अमावस्या के दिन पाठ करने से सर्प दृष्टिगोचर न होगा ।